कन्हैया कुमार

बिहार से तिहाड़

भारत के सबसे मशहूर छात्र नेता के संस्मरण

Downloaded from PDFmaza.com

बिहार से तिहाड़

1. Cover
2. Preface
3. पूर्वकथन
4. भाग 1बचपन
5. भाग 2पटना
6. भाग 3दिल्ली
7. भाग 4जेएनयू
8. भाग 5तिहाड़
9. Chapter 8

Downloaded from PDFmaza.com

Preface

संघर्षरत जनता के लिए

हरेक की अपनी एक कहानी होती है, लेकिन किसी एक शख़्स की कहानी दूसरे के लिए कल्पना बन जाती है. अगर आप मुझको समझना चाहते हैं, तब आपको मेरी दुनिया में आना होगा, चीज़ों को उस तरह देखना होगा, जैसे मैं उन्हें देखता हूं. आइए, मेरे साथ इस असाधारण देश के एक साधारण से गांव से आने वाले एक साधारण छात्र की इस राजनीतिक यात्रा पर चलिए.

पूर्वकथन

तिहाड़ में आज मेरा पंद्रहवां दिन था. पिछले दिन मुझे दिल्ली हाई कोर्ट से ज़मानत मिल गई थी, लेकिन कागज़ी कार्रवाइयों की वजह से आज का दिन भी जेल में ही गुज़रा था.

दोपहर के वक़्त मैं खाना खाकर लेटा हुआ था. तभी एक सिपाही मेरे सेल में आया. तमाम पाबंदियों के बावजूद जेल में कुछ ऐसे सिपाही थे जो मुझसे बातें किया करते थे.

'बस आज आख़िरी दिन है. तुम आज रिहा हो जाओगे.'

मैं उठ कर उसके करीब, सेल के दरवाज़े तक गया.

उसने कहा, 'मुझे एक सवाल का जवाब देना. इसके लिए मैं तुम्हें एक कहानी सुनाऊंगा.'

कहानी कुछ यूं थी…

किसी राज्य में एक राजा था. वो अपनी प्रजा से बहुत प्यार करता था और बहुत लोकप्रिय था. जनता उसे पसंद करती थी. उसका राज्य काफी समृद्ध था और लोग उसके राज्य में खुश थे. उसकी एक बेटी थी. लेकिन अब राजा बुढ़ापे की ओर बढ़ रहा था और अपने राज्य और जनता, उसकी खुशहाली और उत्तराधिकारी, इन तमाम बातों की चिंता करने लगा था.

उसके बाद इस राज्य को कौन चलाएगा और उसकी बेटी से शादी कौन करेगा? इन दोनों सवालों का वो एक हल तलाशना चाहता था. उसने सोचा कि किसी लायक लड़के से अपनी बेटी की शादी कर दूं ताकि वो मेरे बाद

Downloaded from PDFmaza.com

मेरी बेटी का भी खयाल रखे और मेरा राजपाट भी देखे. उसने बहुत कोशिश की, आसपास के राजकुमारों को जाकर देखा और उनसे बातचीत की. लेकिन उसे कोई भी लायक लड़का नहीं मिला.

एक दिन उसके एक दरबारी ने एक प्रतियोगिता कराने का सुझाव दिया. 'उस प्रतियोगिता में जो सफल होगा, उससे आप राजकुमारी की शादी

करा दीजिएगा और उसे ही राजपाट सौंप दीजिएगा. इससे आप चैन से आंखें मूंद पाएंगे.'

राजा को ये सुझाव अच्छा लगा. उसने आसपास के सारे राज्यों में मुनादी करवा दी कि राजकुमारी से शादी करने के लिए और शादी करने के बाद इस राज्य का राजा बनने के लिए राजा ने एक प्रतियोगिता का आयोजन किया है. प्रतियोगिता एक पहाड़ पर होनी थी, जिसकी ऊंची चोटी से एक झरना गिर रहा था और नीचे एक झील थी, जिसमें ढेर सारे मगरमच्छ थे. भागीदारों को उस चोटी पर से नीचे झील में छलांग लगानी थी, और जान बचाते हुए तैर कर नियत जगह तक पहुंचना था.

अलग-अलग जगहों से अलग-अलग वर्गों के, सभी जातियों, सभी धर्मों के राजकुमार इस प्रतियोगिता में शामिल होने के लिए आने लगे. मौका एक सुंदर राजकुमारी से शादी करने का भी था और एक खुशहाल राज्य का राजा बनने का भी. सारे प्रतियोगी एक लाइन से खड़े हो गए और जिसका भी नंबर आता था वो झरने के पास आता था, नीचे झील में देखता था और उसकी ऊंचाई को देख कर डर जाता था. ये जान कर उसका डर दोगुना हो जाता था कि नीचे झील में मगरमच्छ हैं.

एक-एक करके सारे दावेदार पीछे हट गए. लेकिन एक दिन उनमें से एक आदमी ऐसा निकला जो किसी तरह से झरने से झील में गिर पड़ा और फिर तैर तक नियत जगह तक पहुंचने में कामयाब हुआ. राजा ने उसके साथ अपनी बेटी की शादी करा दी और उसको अपना राज-पाट सौंप दिया. राजा उसके बाद संन्यास लेकर जंगल में चला गया.

पुराने राजा के राज्य छोड़ते ही नए राजा ने सबसे पहला काम ये किया कि उसने एक बहुत ऊंचा एक सिंहासन बनवाया. इतना ऊंचा कि वो एक सीढ़ी पर चढ़ कर उस सिंहासन पर जाकर बैठता था.

'तो सवाल ये है कन्हैया कि एक ऐसा आदमी, जो अपनी जान जोखिम में डाल कर, इतनी सूझबूझ से प्रतियोगिता को जीत कर राजा बना, उसने पद

Downloaded from PDFmaza.com

संभालते ही इस तरह का अतार्किक काम क्यों किया?’

Downloaded from PDFmaza.com

पूर्वकथन

तिहाड़ में आज मेरा पंद्रहवां दिन था। पिछले दिन मुझे दिल्ली हाई कोर्ट से ज़मानत मिल गई थी, लेकिन कागज़ी कार्रवाइयों की वजह से आज का दिन भी जेल में ही गुज़रा था।

दोपहर के वक्त मैं खाना खाकर लेटा हुआ था। तभी एक सिपाही मेरे सेल में आया। तमाम पाबंदियों के बावजूद जेल में कुछ ऐसे सिपाही थे जो मुझसे बातें किया करते थे।

'बस आज आखिरी दिन है। तुम आज रिहा हो जाओगे।'

मैं उठ कर उसके करीब, सेल के दरवाज़े तक गया।

उसने कहा, 'मुझे एक सवाल का जवाब देना। इसके लिए मैं तुम्हें एक कहानी सुनाऊंगा।'

कहानी कुछ यूं थी...

किसी राज्य में एक राजा था। वो अपनी प्रजा से बहुत प्यार करता था और बहुत लोकप्रिय था। जनता उसे पसंद करती थी। उसका राज्य काफी समृद्ध था और लोग उसके राज्य में खुश थे। उसकी एक बेटी थी। लेकिन अब राजा बुढ़ापे की ओर बढ़ रहा था और अपने राज्य और जनता, उसकी खुशहाली और उत्तराधिकारी, इन तमाम बातों की चिंता करने लगा था।

उसके बाद इस राज्य को कौन चलाएगा और उसकी बेटी से शादी कौन करेगा? इन दोनों सवालों का वो एक हल तलाशना चाहता था। उसने सोचा कि किसी लायक लड़के से अपनी बेटी की शादी कर दूं ताकि वो मेरे बाद मेरी बेटी का भी खयाल रखे और मेरा राजपाट भी देखे। उसने बहुत कोशिश की, आसपास के राजकुमारों को जाकर देखा और उनसे बातचीत की। लेकिन उसे कोई भी लायक लड़का नहीं मिला।

एक दिन उसके एक दरबारी ने एक प्रतियोगिता कराने का सुझाव दिया। 'उस प्रतियोगिता में जो सफल होगा, उससे आप राजकुमारी की शादी करा दीजिएगा और उसे ही राजपाट सौंप दीजिएगा। इससे आप चैन से आंखें मूंद पाएंगे।'

Downloaded from PDFmaza.com

राजा को ये सुझाव अच्छा लगा। उसने आसपास के सारे राज्यों में मुनादी करवा दी कि राजकुमारी से शादी करने के लिए और शादी करने के बाद इस राज्य का राजा बनने के लिए राजा ने एक प्रतियोगिता का आयोजन किया है। प्रतियोगिता एक पहाड़ पर होनी थी, जिसकी ऊंची चोटी से एक झरना गिर रहा था और नीचे एक झील थी, जिसमें ढेर सारे मगरमच्छ थे। भागीदारों को उस चोटी पर से नीचे झील में छलांग लगानी थी, और जान बचाते हुए तैर कर नियत जगह तक पहुंचना था।

अलग-अलग जगहों से अलग-अलग वर्गों के, सभी जातियों, सभी धर्मों के राजकुमार इस प्रतियोगिता में शामिल होने के लिए आने लगे। मौका एक सुंदर राजकुमारी से शादी करने का भी था और एक खुशहाल राज्य का राजा बनने का भी। सारे प्रतियोगी एक लाइन से खड़े हो गए और जिसका भी नंबर आता था वो झरने के पास आता था, नीचे झील में देखता था और उसकी ऊंचाई को देख कर डर जाता था। ये जान कर उसका डर दोगुना हो जाता था कि नीचे झील में मगरमच्छ हैं।

एक-एक करके सारे दावेदार पीछे हट गए। लेकिन एक दिन उनमें से एक आदमी ऐसा निकला जो किसी तरह से झरने से झील में गिर पड़ा और फिर तैर तक नियत जगह तक पहुंचने में कामयाब हुआ। राजा ने उसके साथ अपनी बेटी की शादी कर दी और उसको अपना राज-पाट सौंप दिया। राजा उसके बाद संन्यास लेकर जंगल में चला गया।

पुराने राजा के राज्य छोड़ते ही नए राजा ने सबसे पहला काम ये किया कि उसने एक बहुत ऊंचा एक सिंहासन बनवाया। इतना ऊंचा कि एक सीढ़ी पर चढ़ कर उस सिंहासन पर जाकर बैठता था।

‘ तो सवाल ये है कन्हैया कि एक ऐसा आदमी, जो अपनी जान जोखिम में डाल कर, इतनी सूझबूझ से प्रतियोगिता को जीत कर राजा बना, उसने पद संभालते ही इस तरह का अतार्किक काम क्यों किया ? ’

Downloaded from PDFmaza.com

भाग 1बचपन

‘नाम क्या है?’ उसने पूछा.

‘कन्हैया कुमार.’

हमारे बीच लकड़ी की एक टेबल थी, जिसके उस पार वो बैठा हुआ था.

‘बाप का नाम क्या है?’

‘जयशंकर सिंह.’

‘मां का नाम क्या है?’

‘मीना देवी.’

लोदी रोड थाने के उस कमरे में मेरे अलावा सिर्फ़ दो लोग थे. लेकिन ख़ाक़ी वर्दी पहने हुए, मुझसे पूछताछ करने वाले उस शख़्स के छोटे-छोटे, तीखे सवाल मुझे उलझा रहे थे. कमरा इतना भरा हुआ लग रहा था कि दम घुटने लगा था.

‘गांव का नाम क्या है?’

‘मसनदपुर, बीहट.’

‘कितने भाई हो?’

‘तीन. मुझसे एक बड़ा, एक छोटा.’

तभी कमरे में एक और आदमी दाखिल हुआ. उसने देखते ही मेरे सिर को थपथपाते हुए उठा दिया, ‘बैठ कैसे गए तुम? चलो उठो. देशद्रोही साले.’

‘बहन कितनी है? शादी हो गई?’ उस पहले आदमी ने सवाल जारी रखे. मैं नेमप्लेट पर लिखा उसका नाम इस तरह देख रहा था कि वो मेरी यादों में दर्ज हो जाए.

‘बहन एक ही है. उसकी शादी हो चुकी है.’

उसने मेरा ज़ब्त किया हुआ फोन निकाला और कोई नंबर डायल किया. मुझे नहीं पता था कि वो किससे बात कर रहा था, लेकिन मैं सुन पा रहा था कि वो उनसे कुछ सवाल कर रहा था. फिर उसने दूसरी तरफ़ बोल रहे आदमी को बताया कि उनके बेटे को गिरफ़्तार कर लिया गया है.

Downloaded from PDFmaza.com

वे मेरे पिताजी थे. अचानक ही वह छोटा सा कमरा, जिसमें मैं था, मेरे परिवार- मेरी मां, मेरे गांव, अपने लोगों से मानो घिर गया, जो पिछले कई घंटों से मेरे ज़ेहन से करीब-करीब गायब थे. मुझे दिल के मरीज़ अपने पिताजी की फिक्र होने लगी, जिन पर इस ख़बर का बहुत बुरा असर हो सकता था. मैंने अपनी मां के बारे में सोचा, जिससे मैंने पिछले कई महीनों से बात नहीं की थी. मैंने अपने गांव के बारे में सोचा, जिस पर इस ख़बर का असर होना था कि उसके एक लड़के को जेल भेज दिया गया था.

जेएनयू, मेरा रिसर्च, मेरे दोस्त, छात्र राजनीति – यही सब मेरी दुनिया रही थी और इन्हीं के चारों तरफ़ मेरा दिमाग घूमता रहता था. लेकिन पुलिस के सवालों ने मुझे अपने अतीत, अपने गांव, अपने मां-बाप, अपने अपने भाई-बहनों के बारे में सोचने पर मजबूर किया, जिन्होंने मुझे रचा था. जिस पल यह बात बिल्कुल साफ़ हो गई कि मुझे थाने में सिर्फ़ थोड़ी बातचीत के लिए नहीं ले आया गया था, बल्कि मैं गिरफ़्तार हो चुका था, उस पल मेरे बचपन की यादों के जाने-पहचाने चेहरे सबसे सजीव रूप में मेरे सामने आ गए थे.

मेरा गांव बीहट पटना-बेगूसराय रेलवे लाइन से जुड़ा है, और मोकामा और बरौनी स्टेशनों के बीच में आता है. बरौनी थर्मल पावर स्टेशन, फर्टिलाइज़र्स कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया, बरौनी रिफाइनरी से घिरे हुए करीब 67 हज़ार की आबादी वाले इस बड़े से गांव ने अनेक राजनेता, मंत्री, जज, राज्यपाल, प्रशासनिक और पुलिस अधिकारी, खिलाड़ी, लेखक, कवि, कलाकार और अभिनेता दिए हैं.

मेरे एक दूर के रिश्तेदार रामचरित्र सिंह इसी गांव से थे, जो राज्य के पहले विद्युत और सिंचाई मंत्री थे. उन्हें इलाके के विकास और कारखानों की स्थापना का श्रेय दिया जाता है. उनके बेटे कॉमरेड चंद्रशेखर सिंह इस इलाके में कम्युनिस्ट आंदोलन को लेकर आए और उसका मज़बूत आधार तैयार किया. आगे चल कर वे भी कर्पूरी ठाकुर सरकार में विद्युत और सिंचाई मंत्री बने.

बीहट, बेगूसराय ज़िले का सबसे संपन्न गांव है. हरेक वार्ड में प्राथमिक स्कूल, हरेक पंचायत में प्राथमिक अस्पताल, पांच मध्य विद्यालय, दो हाई स्कूल हैं. 1996 तक कम्युनिस्ट आंदोलन के लंबे प्रभाव के कारण सार्वजनिक जीवन में महिलाओं की भागीदारी और जगहों की तुलना में ज़्यादा थी. लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि गांव में सभी संपन्न हैं. भयानक गैरबराबरी बीहट में अभी भी है.

Downloaded from PDFmaza.com

इसी गांव के मसनदपुर मुहल्ले में मेरा जन्म हुआ था.

मेरे जन्म में कुछ भी असाधारण नहीं था. जैसे भारत के गांवों के गरीब परिवारों में बच्चे पैदा होते हैं; उनका नाम रखा जाता है; वे पढ़ना-लिखना शुरू करते हैं और उनकी परवरिश होती है; कुछ स्कूल जाते हैं; कुछ पढ़ाई छोड़ कर काम में लग जाते हैं; मेरी ज़िंदगी भी उन्हीं बातों का दोहराव रही है. बस कहीं-कहीं कुछ फेरबदल रहा है.

मेरा परिवार बेहद गरीब था. पहले मैं अपना परिचय देते हुए अपने पिता का नाम बताता था. लेकिन अब मैं सोचता हूं कि बच्चों को सबसे पहले अपनी मां का नाम बताना चाहिए. मेरी मां मीना देवी मेरे पिताजी से ज़्यादा पढ़ी-लिखी हैं और वे ही काम करके परिवार का गुज़ारा चलाती हैं. मेरे पिताजी जयशंकर सिंह ने दसवीं की परीक्षा नहीं दी, लेकिन मेरी मां दसवीं पास हैं.

पिताजी पेशे से किसान थे लेकिन खेती के लिए पर्याप्त ज़मीन नहीं थी, इसलिए अक्सर ही वे दिहाड़ी मज़दूरी करके घर चलाते थे. जब उन्हें कई तरह की बीमारियां हो गईं तभी मेरी मां को एक छोटी सी नौकरी मिली. एकीकृत बाल विकास सेवा योजना के तहत पांच साल तक के बच्चों की शिक्षा और देख-रेख के लिए देश भर में आंगनवाड़ी केंद्र खोले गए हैं. मेरे गांव में स्थित ऐसे ही एक केंद्र पर मेरी मां को सेविका की नौकरी मिली, जिनको हर महीने तीन हज़ार रुपए मेहनताना मिलता है.

मेरी एक बहन है, जूही; और मेरे दो भाई हैं- मणिकांत मुझसे बड़े हैं और प्रिंस छोटा. बचपन में मुझे अपनी जाति नहीं मालूम थी, क्योंकि उस उम्र में ये शायद अहम सवाल नहीं था. लेकिन आज ये एक महत्वपूर्ण सवाल है. इसलिए कह देना ज़रूरी है कि जन्म की वजह से मैं सामान्य श्रेणी से ताल्लुक रखता हूं. यह मेरी सामाजिक पहचान का हिस्सा है, जिसे मैंने खुद से नहीं चुना है. धर्म को मैं नहीं मानता, लेकिन इस देश में न मानते हुए भी एक धर्म होता है क्योंकि नहीं मानने का लोगों के पास आमतौर पर कोई विकल्प नहीं होता है. आप अपने धर्म में पैदा होते हैं, उसे चुनते नहीं हैं - और मेरा जन्म एक हिंदू परिवार में हुआ.

मेरे नानाजी कांग्रेस के सक्रिय कार्यकर्ता हुआ करते थे. बाकायदा कांग्रेस वाली टोपी लगाते थे. उसे गांधी टोपी कहना उचित नहीं लगता क्योंकि गांधी कभी टोपी नहीं लगाते थे. मेरे दादाजी भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (भाकपा) से जुड़े हुए थे, औपचारिक सदस्य नहीं थे. पार्टी से उनका जुड़ाव मज़दूर आंदोलन के रास्ते से हुआ. वे बरौनी थर्मल पावर स्टेशन में बतौर

Downloaded from PDFmaza.com

हेड फोरमैन काम करते थे. वहां वे देश का पहला मजदूर संगठन ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस (एटक) के सदस्य थे और इस तरह कम्युनिस्ट पार्टी से उनका रिश्ता शुरू हुआ. आर्थिक स्थितियां ही असल में राजनीतिक जुड़ावों को तय करती हैं.

पिताजी का राजनीतिक झुकाव शुरू से ही घर भर से अलग था. पता नहीं ये उनका घर के प्रति विद्रोह था या खुद के प्रति, लेकिन जहां हमारा पूरा परिवार भाकपा के साथ हमदर्दी रखता और उसे वोट करता था, मेरे पिताजी भाकपा से टूटे हुए एक अलग धड़े भाकपा (माले) लिबरेशन के साथ सिंपथाइज़ करते थे, जो ये समझता था कि देश में बंदूक के दम पर क्रांति की जा सकती है.

कुछ दिनों के बाद परिवार की बदहाली या फिर आंदोलन की स्थिति को देखते हुए, मेरे पिताजी एक सामान्य गृहस्थ जीवन में लौट आए थे. वे बच्चों के लालन-पालन, परिवार को देखने और काम के सिलसिले में घूमने में मन लगाने लगे. लोकतंत्र में उनका भरोसा बना रहा और वे वोट देने जाते थे. मुझे लगता है कि वे भाकपा को ही वोट करते थे.

मेरे परिवार की राजनीतिक पृष्ठभूमि महज़ एक परिवार की नहीं है, बल्कि इस देश के लाखों परिवारों की राजनीतिक दास्तान है. देश के बड़े हिस्से पर पहले कांग्रेस का प्रभाव था. मेरे परिवार और गांव पर भी कांग्रेस का प्रभाव था. मेरे नाना जी के अलावा मंत्री रामचरित्र सिंह भी इसकी मिसाल थे, जो हमारे बड़े परिवार का ही हिस्सा थे. उनके बेटे चंद्रशेखर सिंह बीएचयू में उच्च शिक्षा के लिए गए और वहां क्रांतिकारियों के प्रभाव में उन्होंने कांग्रेस छोड़ दी.

उनकी यह राजनीतिक यात्रा हमारे गांव की राजनीतिक यात्रा भी बन गई. चंद्रशेखर सिंह अपने साथ मार्क्सवादी विचारधारा लेकर आए. उनके असर में गांव के ज़्यादातर युवा भाकपा से जुड़ गए. कांग्रेस का असर घटने लगा. आज़ादी से जो उम्मीदें जगी थीं, वो कांग्रेस ने कभी पूरी नहीं कीं. हम अभी भी गरीब थे, मौकों की कमी थी, गैरबराबरी व्यापक थी. और इसलिए युवा, पढ़े-लिखे तबके, मज़दूर, किसान, दलित और गरीब कम्युनिस्ट पार्टी से जुड़ने लगे. और फिर पार्टी को पांव जमाते देर नहीं लगी. इसका नतीजा ये हुआ कि रामचरित्र सिंह को कैबिनेट से इस्तीफा देना पड़ा. उन पर यह उंगली उठने लगी थी कि वे तो कांग्रेस सरकार में मंत्री हैं और उनका बेटा कम्युनिस्ट नेता हो गया है.

Downloaded from PDFmaza.com

आज के तथाकथित हिंदू राष्ट्रवादी तब कहीं नहीं पाए जाते थे. कांग्रेस के लुच्चे-लफंगे ही आगे चल कर भाजपाई हुए. तब गांव में उस वक़्त तीन तरह की ही पार्टियां होती थीं, कांग्रेस, सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट.

गांव और मेरे परिवार पर कम्युनिस्ट पार्टी का प्रभाव होने के बावजूद पितृसत्ता, जातिवाद, धार्मिकता, इन तमाम चीज़ों का असर था. बचपन में मैंने अपने परिवार में प्रगतिशीलता, आधुनिकता और पुरातनपंथी सोच जैसी आपस में विरोधी चीज़ों को एक साथ मौजूद देखा था. एक तरफ़ मेरे दादाजी मेरी मां को पढ़ाना चाहते थे, जिनकी पढ़ाई मेरे नाना ने बंद करा दी थी. दूसरी तरफ़ वो भगवान को न मानते हुए भी दादी के लिए छठ पूजा के दौरान बड़े जतन से तमाम चीज़ों की व्यवस्था करते थे और डाला यानी पूजा के सामान की टोकरी लेकर घाट पर दादी के साथ जाते थे. कह नहीं सकता कि ये श्रद्धा थी या पत्नी के प्रति प्यार था. इस तरह मैं अपने परिवार में आधुनिकता और ग्रामीण संस्कृति के मेल को देखते हुए बड़ा हुआ.

मेरे पिताजी की रुचि सिलेबस की किताबों से ज़्यादा बाहर की किताबों में थी. इसलिए उनके पास डिग्री चाहे बड़ी न हो पर उनमें ज्ञान और समझ भरपूर थी. हालांकि हमारे देश में ज्ञान और समझ से ज़्यादा डिग्री का मोल है. इस मामले में मां, मेरे पिताजी से आगे निकलीं.

मेरी मां में इसकी झलक मिलती है कि गांव की औरतें कैसी समस्याओं का सामना करती हैं. लेकिन उनमें इसकी झलक भी मिलेगी कि वो कितनी असाधारण हैं. उनकी शादी कम उम्र में हो गई, जल्दी ही वो मां बन गईं, जिनको परिवार की ज़िम्मेदारी भी उठानी थी, लेकिन उन्होंने अपनी पढ़ाई जारी रखी. कहते हैं कि औरतें मेहनती और सहनशील होती हैं; लेकिन हकीकत यह है कि सामाजिक ढांचा उन्हें ऐसा बनने पर मजबूर करता है. मां भी इससे अलग नहीं थीं और उन्होंने बखूबी इन ज़िम्मेवारियों को निभाया. बच्चे को पाला, सास ससुर की देखभाल की और लगातार पढ़ाई जारी रखी. इसीलिए मेरे लिए पिताजी से ज़्यादा महत्वपूर्ण हमेशा मां रही हैं.

मां के बाद परिवार में मैं अपने दादाजी की सबसे ज़्यादा कद्र करता हूं, जो गांव से 35 किमी की दूरी तय कर पढ़ने जाते थे. जब रामचरित्र सिंह, मेरे दादाजी के चाचा, मंत्री बने तो बेगूसराय में कई फैक्टरियां स्थापित हुईं. उन्हीं में से एक में मेरे दादाजी को हेल्पर की नौकरी मिली और फिर तरक्की करते हुए वे हेड फोरमैन के पद तक पहुंचे.

Downloaded from PDFmaza.com

इसने घर की माली हालत को सुधार दिया था. दादाजी ने अपनी बेटियों को पढ़ाया और वे टीचर बनीं. उनकी शादियां पढ़े-लिखे परिवारों में हुईं. दादाजी की कड़ी मेहनत की वजह से ही हमारा परिवार गरीबी से थोड़ा बाहर निकलने लगा था. मेरे परिवार के दूसरे लोगों चाचा, बुआ आदि की माली हालत हमसे कहीं अच्छी है. असल में पिताजी क्रांतिकारी राजनीति में व्यस्त थे और वे हमारे गुज़र-बसर की ओर अच्छे से ध्यान नहीं दे सके थे.

राजनीति करने का उनका तरीका भी अलग था. पिताजी का रहन-सहन, उठना-बैठना अपनी जाति के बजाए दूसरी जातियों के लोगों के बीच था. उन्होंने उनके सोच-विचार और व्यवहार को अपना लिया था. उस वक़्त गांव में जातीय उत्पीड़न को लेकर एक विद्रोह पनप रहा था. जहां पूरा परिवार लोकतंत्र और संसदीय प्रणाली में यकीन करता था, पिताजी को लगता था कि यह सब धोखा है और इससे शोषण का खात्मा नहीं हो सकता. अगर ज़मींदार, लोगों को सता रहा है, तो ज़मींदार को मार कर उसे सबक सिखाना होगा. एक तरफ़ जहां घर के दूसरे लोग पढ़ रहे थे, अपना कैरियर बना रहे थे, मेरे पिताजी घर-परिवार से दूर क्रांति के अपने सपनों को जी रहे थे. लेकिन सपनों को जीना उतना आसान नहीं होता.

इसका असर बाद में हम भाई-बहनों और मां के ऊपर पड़ा. परिवार के बाक़ी लोगों की स्थिति ठीक थी, लेकिन हमारी स्थिति ज़्यादा ख़राब होती चली गई.

गरीबी के दंश से बड़ा कोई दंश नहीं है. शोषण को समझ पाने के लिए शोषित होना ज़रूरी है. वरना संपन्न लोगों को शोषण की कहानियां कपोल कथा लगती हैं.

बचपन अजीब सी बातों का पिटारा था. बड़ों को भले ऐसा न लगे, लेकिन बचपन में बातें बड़ी अजीब लगती थीं. मसलन मैं मां को दीदी कहता था. शायद यह मैंने अपने मामा से सीखा था, जो मां की शादी के वक़्त उनके साथ चले आए थे और मेरे ही घर में वे रहते थे. जब मैं आठवीं-नौवीं कक्षा में आया, तब जाकर मुझे यह समझ में आया कि मां को दीदी नहीं कहा जाता.

परिवार की हालत ख़राब होने के कारण मुझसे बड़े भाई और बहन मेरी दो बुआओं के साथ अलग-अलग रहते थे. हम भाई-बहनों का बचपन एक साथ नहीं बीता. मैं आठवीं में था, जब उस बुआ का देहांत हो गया, जिनके यहां

Downloaded from PDFmaza.com

मेरी दीदी रहती थी. फिर दीदी हमारे घर आ गई. मुझे मालूम था कि वो मेरी बहन है लेकिन कई मायनों में वो मेरे लिए नई थी.

अब मुझे घर की जगहों में उसके साथ हिस्सा बंटाना पड़ता और हमारे किताब और कंघा आदि रखने की जगह को लेकर झगड़े होने लगे. संसाधनों की कमी भाई-बहन के बीच रिश्तों को भी कुपोषित कर देती है. लेकिन मैंने बहन के रूप में उसे अपनी ज़िंदगी में जगह दे दी थी. फिर भी मैं उसे दीदी नहीं कहता था, नाम से उसे पुकारता था. फिर एक दिन जब मेरे दोस्तों ने इस पर मेरा मज़ाक उड़ाया, उस दिन से मैंने मां को मां और बहन को दीदी कहना शुरू किया.

मेरे नाम की पहेली भी ऐसी ही अजीब थी. मेरा बड़ा भाई जन्माष्टमी के दिन पैदा हुआ था और उसका नाम था मणिकांत. मेरे पैदा होने की तारीख किसी को याद नहीं थी, लेकिन मेरा नाम कन्हैया था. यह बात मुझे उलझन में डालती थी कि ऐसा क्यों था. कन्हैया नाम पर मेरे भैया की दावेदारी ज़्यादा बनती थी. आगे चल कर जब मैं स्कूल जाने लगा था, तो मेरे साथ पढ़ने वाले बच्चे अपने जन्म की कहानियां सुनाते थे. वे उन जगहों या हॉस्पीटल के बारे में बताते थे जहां वे पैदा हुए थे. मेरे पास ऐसी कोई कहानी नहीं थी. एक दिन स्कूल से लौट कर मैंने अपनी मां से पूछा कि मैं कहां पैदा हुआ था.

उन्होंने बताया कि उस दिन सुबह हमेशा की तरह वो खाना बना रही थीं. आटा निकालने के लिए वो कोने में रखे बोरे तक गई थीं कि उनके पेट में दर्द हुआ. आटे के उस बोरे के पास ही मेरा जन्म हुआ था. इसके बाद मैं काफी समय तक उस जगह को देखता और सोचता कि वही चौका मेरा हॉस्पीटल है.

नाम की उलझन भी इसी तरह सुलझी. मैं अभी भले देखने में कमज़ोर हूं, लेकिन बचपन में ऐसा नहीं था. जन्म के समय मैं बहुत तगड़ा था और इससे मेरी मां को बहुत तकलीफ़ उठानी पड़ी थी. पिताजी की अनियमित ज़िंदगी को देखते हुए दादा-दादी ने अपनी गर्भवती बहू के साथ रहना तय किया था. वे अपनी सर्विस और पेंशन की रकम से मेरी मां की देखरेख करते और मां उनका ख्याल रखतीं.

इस तरह मेरे जन्म के समय मां को अच्छी देख रेख मिली और मैं तगड़ा और तंदुरुस्त पैदा हुआ. पैदाइश के फौरन बाद परिवार की दूसरी औरतें

Downloaded from PDFmaza.com

और आस-पड़ोस के लोग देखने आए और इसी दौरान मेरी चाची ने अपनी गोद में मुझे लेकर कहा कि यह लड़का देखने में एकदम कन्हैया जैसा है.

मेरा नाम इसी तरह कन्हैया रखा गया. न मेरी कोई कुंडली बनी, न ग्रहदशा देखी गई और न ही किसी पंडित जी से यह पूछा गया कि मेरा नाम किस अक्षर से होना चाहिए. इस अस्त-व्यस्तता में किसी को याद नहीं रहा कि मैं किस दिन पैदा हुआ था. इसलिए जब स्कूल में नाम लिखाने का वक़्त आया तो टीचर ने मेरी जन्मतिथि के रूप में 2 जनवरी दर्ज कर दी. लेकिन वह मेरी सचमुच की जन्मतिथि नहीं थी और इसे वे टीचर भी जानते थे क्योंकि देहाती इलाकों में यही आम चलन है. मेरे मन में इसे जानने की छटपटाहट हमेशा रही थी. संयोग से इसका पता मुझे मैट्रिक की परीक्षा के बाद लगा.

पढ़ाई-लिखाई करने के लिए कॉपियों की कमी थी, तो पिताजी की पुरानी डायरियां लिखने के लिए इस्तेमाल करता था. ऐसी ही एक डायरी में पन्ने पर यह लिखा हुआ देखा: "आज मेरे घर में एक मेहमान का आगमन हुआ है." वह पन्ना 27 मार्च का था. साल वही था, जिसमें मैं पैदा हुआ था.

मैंने मां से पूछा तो उन्होंने कहा, 'यही तुम्हारी जन्मतिथि है. तुम्हारे पापा ने लिख रखा था.' इस तरह करीब पंद्रह साल की उम्र में मुझे पता लगा कि मेरा जन्म कब हुआ था.

स्कूल जाना मैंने कब शुरू किया, यह मुझे ठीक-ठीक याद नहीं. बस इतना याद है कि शुरू शुरू में मैं अपनी एक चाची और फिर आगे चल कर मां के साथ विद्यालय जाता था. स्कूल का नाम था मध्य विद्यालय, मसनदपुर. यह एक मज़ेदार जगह थी. गांव का यह दूसरा मिडिल स्कूल था और आज़ादी से पहले बना था. इसके कमरे बहुत बड़े-बड़े थे. लेकिन उनकी संख्या सिर्फ़ दो ही थी और उन्हीं में आठ कक्षाएं लगती थीं. जब मैंने वहां दाखिला लिया था, जब शिक्षकों की संख्या बारह हुआ करती थी, लेकिन मेरे निकलते-निकलते वे बस दो रह गए थे.

गांवों के छोटे-छोटे स्कूलों की तरह, इसमें भी सुविधाओं की कमी थी. अगर किसी बच्चे को पेशाब करने जाना होता उसे सीधे यह बात कहने की इजाज़त नहीं थी. उसे कहना होता, 'मैडम पांच मिनट की छुट्टी चाहिए.' पांच मिनट की वह छुट्टी खेत-खलिहान के स्वतंत्र राज में काटी जाती. क्योंकि शौचालय नहीं था. न ही वहां पुस्तकालय था. यहां तक कि झंडा फहराने की भी कोई जगह नहीं हुआ करती और ईंट जोड़ कर झंडा फहरा लिया जाता था.

Downloaded from PDFmaza.com

झंडे की बात चली तो 15 अगस्त और 26 जनवरी हम बच्चों के लिए सबसे मज़ेदार होता, क्योंकि सिर्फ़ इसी दिन हमें कुछ खाने को मिलता था. बेशक, यह शिक्षक पर निर्भर करता था. अगर शिक्षक उदार होते, बच्चों से प्यार करते तो हमें जलेबी मिलती थी, लेकिन अगर वे कंजूस हुए तो सस्ती टॉफियों से ही संतोष करना पड़ता था.

बढ़ती उम्र के साथ मैं कमज़ोर होता गया था, जिससे मैं खेलकूद में हिस्सा नहीं ले पाता था. मेरा रुझान गाने में, लेख में, भाषण देने और तस्वीरें बनाने में था जिसकी वजह से इन दोनों दिनों की अहमियत बढ़ गई थी. जो छात्र इन गतिविधियों में हिस्सा लेते थे, उन्हें थोड़ी ज़्यादा मिठाई मिलती थी.

बचपन में मैं सभी बच्चों की ही तरह शरारती था. बच्चों के साथ मिल कर पूरे गांव में शरारतें करता. पर हम कोशिश करते कि आसानी से पकड़े न जाएं. मसलन, एक बार दीवाली पर जब चलाने के लिए पटाखे नहीं थे तो हम बच्चों ने सरपत (छप्पर बनाने वाली घास) में आग लगा दी, जिसमें से जलने पर पटाखे की तरह चटखने की आवाज़ें आती हैं. हम इसके मज़े ही ले रहे थे कि आग बढ़ते-बढ़ते एक आदमी की बथान में चली गई, जिसमें उसकी गाय बंधी थी. फिर तो हम वहां से रफूचक्कर हो गए. हालांकि आग तो बुझा ली गई, लेकिन हंगामा बहुत हुआ. गर्मियों में हम बाग में जाकर पके हुए आम तोड़ लेते और जब मालिक आम गिराने के लिए पेड़ों की डालियां हिलाते तो उन्हें कच्चे आम ही मिलते. यही हाल कटहल के साथ भी होता. इसी तरह गेहूं के खेतों को धांग (रौंद) कर उसमें चोर-पुलिस खेलते. लेकिन चाचाजी या पिताजी की वजह से हम बच जाते, जो हमारे खिलाफ़ उलाहनों पर कान नहीं देते.

स्कूल में भी शरारतें चलतीं. आगे बैठे बच्चे तो पढ़ते रहते और पीछे बैठे बच्चे आपस में लड़ रहे होते. इस दौरान टीचर बैठे ऊंघा करते. मैं कागज़ के जहाज़ बना कर उड़ाया करता और चॉक चुराता. हम पिछले दिनों टीवी पर देखी गई फिल्मों की फाइट की नकल भी किया करते थे.

आम तौर पर मैं कक्षा में प्रथम आता लेकिन असल में सभी पास कर जाते थे. कहते हैं कि आपको आपके आनंद से आनंद नहीं आता, दूसरे की तकलीफ की तुलना में आप आनंदित होते हैं. तो वहां किसी को कोई तकलीफ थी ही नहीं. जो बदमाश था, झगड़ा करता था, स्कूल नहीं आता था, नहीं पढ़ता था, वो भी पास हो जाता था. सरकारी स्कूलों की दुर्दशा की

Downloaded from PDFmaza.com

वजह यह है कि लोग संसद और सरकारी दफ्तरों में तो बैठना चाहते हैं, लेकिन नहीं चाहते कि उनके बच्चे सरकारी स्कूलों में पढ़ें.

पढ़ाई का स्तर मिला-जुला था. जिन शिक्षकों को पढ़ाने में रुचि थी, वो अच्छे से पढ़ाते थे. वहीं ऐसे शिक्षक भी थे, जो पढ़ाने में कोई रुचि नहीं दिखाते और कुछ तो बस परीक्षा में उत्तर पुस्तिका पर अपना नाम लिख देने भर से ही पास कर देते.

तमाम कमियों के बावजूद हमने बहुत कुछ सीखा. बच्चों को गिनती सिखाना, विज्ञान के बारे में बताना, सामाजिक समरसता सिखाना, देश, देशप्रेम आदि इन भावनाओं से भरना, यह सब विद्यालय ही सिखाते थे.

दिसंबर का महीना था और रिज़ल्ट आने वाला था. मैं आम तौर पर रिज़ल्ट के फेर में नहीं पड़ता था. किसी सीनियर से लेकर मैं अगले साल की सारी किताबें पढ़ डालता था और उनमें भी सबसे पहले हिंदी की कविताएं पढ़ डालता था. सिलेबस इससे ज़्यादा कुछ होता भी नहीं था. कक्षा छह तक अंग्रेज़ी के छब्बीस अल्फाबेट्स के अलावा कोई कुछ नहीं जानता था.

मैं स्कूल के रास्ते में ही था कि स्कूल से लौट रहे बच्चों ने मुझे बताया कि मैं फर्स्ट आया था. मैं लौट पड़ा. रास्ते में मुझे अखबार पढ़ते हुए अपने गांव के कविजी मिले. देखते ही उन्होंने मुझसे पूछा, 'बलबउओ, कहां से आ रहे हो?'

'रिज़ल्ट सुन कर आ रहे हैं.'

'क्या रिज़ल्ट आया है?'

'होना क्या था, फिर फर्स्ट कर गए.'

यह बात मुझे बाद में समझ में आई कि मेरे जवाब में एक किस्म का अहंकार भी था. उस वक़्त तो मुझ पर रिज़ल्ट का नशा था. कविजी ने दिलचस्पी दिखाते हुए पूछा, 'अच्छा, फर्स्ट आ गए? फिर बताओ कि उनहत्तर कितना होता है?'

'सात पर नौ.' मैंने पूरे जोश में जवाब दिया.

'बहुत सही! और उन्यासी?'

'आठ पर नौ.'

वे हल्के से हंसे और बोले, 'बिल्कुल तुम्हें फर्स्ट होना चाहिए.'

Downloaded from PDFmaza.com

उस वक़्त तो मैं खुशी में डूबा हुआ घर लौटा कि एक स्थानीय, पढ़े लिखे कविजी से भी मुझे तारीफ मिल गई. लेकिन उस रात उनकी बातें मेरे मन में गूंज रही थीं. जब वो मेरी तारीफ कर रहे थे तो क्या उनकी आवाज़ में थोड़ी हंसी भी थी?

उनके सवाल एक बार फिर मेरे सामने आए और मैंने अपनी गणित की किताब खोल कर तसल्ली करनी चाही. और तब मुझे अहसास हुआ कि मुझे गिनती भी नहीं आती और मैं फर्स्ट आ रहा हूं. यह दुर्दशा थी-यह बात तो तभी मेरी समझ में आ गई थी, लेकिन यह शिक्षा व्यवस्था और समाज की दुर्दशा भी थी यह बात मेरी समझ में बाद में आई.

उसी समय मैंने तय किया कि स्कूल में जो भी पढ़ाया जाए, मुझे उसके अलावा भी पढ़ना है. रातों में जग कर दीया जला कर मैंने हिंदी कविताओं के अलावा गणित, विज्ञान, समाज विज्ञान पढ़ना शुरू किया. बिजली पर भरोसा नहीं कर सकते थे कि कब आएगी और कब चली जाएगी. मुझे रात में देर तक पढ़ते देख कर लोगों ने अपने बच्चों को मेरी मिसाल देनी शुरू कर दी कि मैं कितनी देर तक जाग कर दीया जलाकर पढ़ता रहता था.

मेरी इस धुन के बारे में मेरे मां-पिताजी को मालूम हुआ, पर वो मेरी बहुत मदद नहीं कर सकते थे. लेकिन मेरे स्कूल की प्रिंसिपल उर्वशी जी ने मेरे पिताजी पर दबाव बनाना शुरू किया कि वे अपने काम-काज को लेकर गंभीर हो जाएं. 'बच्चा बहुत मेहनत करता है, अपना नहीं तो अपने बच्चे के भविष्य के बारे में ही कुछ चिंता कीजिए,' वो उन्हें कहतीं.

इसके कुछ ही समय बाद, पिताजी राजनीति से दूर हो गए और अपने परिवार और मेरी पढ़ाई पर ध्यान देने लगे. उर्वशी जी ने उन्हें ये बात एक ऐसे वक़्त में कही, जब आंदोलन से उनका मोहभंग हो ही रहा था - पार्टी ने अपनी राह बदल ली थी और हथियार चलाने वाले लोग अब बैलेट पेपर लेकर घूमने लगे थे. पिताजी में यह बड़ा बदलाव शायद इन दोनों बातों से ही आया था.

उन्होंने कभी घर पर मवेशी नहीं रखा था क्योंकि वे नहीं चाहते थे कि उनके बच्चे गाय और भूसे में फंसें. उन्होंने सिगरेट छोड़ने का भी फैसला किया. चाय वगैरह बनाने के लिए जो दूध खरीदा जाता था, उसको भी बंद कर दिया गया. इन दोनों तरह की बचत का इस्तेमाल मेरे ट्यूशन पर किया जाने लगा.

Downloaded from PDFmaza.com

दूध बंद होने से घर के लोगों को काली चाय से ही संतोष करना पड़ता. शहरों में भले लोग सुख से काली चाय पीते हैं, गांव में लोग दूध की चाय ही पसंद करते हैं. मेरे भाई प्रिंस को चाय पसंद थी. मेरी मां के कप की बची हुई चाय वो पीता था. इससे वो मुझसे नाराज़ हो जाया करता और अक्सर कहता कि मेरी पढ़ाई के लिए उसको दूध वाली चाय से वंचित क्यों होना चाहिए.

स्कूल से बाहर मेरे पहले शिक्षक परमानंद यादव थे, जिन्होंने मुझे अंग्रेज़ी और कई दूसरी बातें सिखाईं. वे करीब बारह-तेरह घंटे मुहल्ले में घूम कर ट्यूशन पढ़ाते थे. उनके छात्रों में मोटरकार, टीवी और टेलीफोन वाले घरों के बच्चे भी थे. कुछ के घरों में इतनी सुविधा नहीं थी. लेकिन सबसे बुरी हालत मेरी ही थी.

हर महीने के आख़िर में वे एक टेस्ट लेते थे, जिसमें भी मैं फर्स्ट आने लगा था. यह पिताजी के लिए एक और समस्या थी. अब पिताजी पर दबाव डालने वाले लोगों में एक और इंसान शामिल हो गया था. उर्वशी जी ने उन पर ज़ोर डाला था कि मेरे लिए ट्यूशन लगाना ज़रूरी था ताकि मेरी पढ़ाई बेहतर हो जाए. अब परमानंद जी कह रहे थे कि मुझे सरकारी स्कूल से निकाल कर किसी निजी स्कूल में दाखिला दिला दिया जाए.

1986 से हमारी शिक्षा व्यवस्था में बड़े बदलाव आने शुरू हुए थे, जब राजीव गांधी सरकार ने नई शिक्षा नीति लागू की थी. इस कदम ने शिक्षा के निजीकरण के बीज बोए थे. पहले मुख्यत: सरकारी स्कूल हुआ करते थे और आर्थिक स्थितियों में फर्क के बावजूद छात्र एक ही स्कूल में पढ़ा करते थे. ऐसा नहीं था कि सारे सरकारी स्कूल सामाजिक समानता पर आधारित थे. कमज़ोर लोगों के बच्चे राज्य सरकारों के मध्य विद्यालयों और उच्च विद्यालयों में पढ़ते थे. संपन्न घरों से आने वाले केंद्रीय विद्यालय में चले जाते थे. सरकारी नौकरी वालों के बच्चों को तो सीधे दाखिला मिलता था या फिर वे अपने परिवार के दूसरे बच्चों को भी अपना बच्चा बोल कर दाखिला करा देते. 1985 में नए और इनसे भी ज़्यादा अच्छे सरकारी स्कूल शुरू किए गए, जिन्हें जवाहर नवोदय विद्यालय कहा जाता है. इन स्कूलों के लिए कड़ी प्रतियोगिता होती और इनमें प्रवेश पाना मुश्किल था. दस बरसों में हमने निजी स्कूलों को पनपते देखा था. इस तरह यह नए हालात थे, जिनमें हमारे परिवार को रास्ता खोजना था.

Downloaded from PDFmaza.com

परमानंद जी ने मुझे एक निजी स्कूल में भेजने की सलाह पिताजी को दी और कहा कि वो जवाहर नवोदय विद्यालय की तैयारी भी कराते रहेंगे. पिताजी ने उनका सुझाव मानने का फैसला किया. मेरा नाम एक निजी स्कूल सनराइज़ पब्लिक स्कूल में लिखा दिया गया और साथ ही मैंने नवोदय विद्यालय की तैयारी के लिए एक मोटी-सी गाइड ख़रीदी.

स्कूल की माहवार फीस 40 रुपए थी और परमानंद जी की फीस 25 रुपए महीने थी. स्कूल तीन किलोमीटर दूर था और मैं उतनी दूर जा नहीं पाता, इसलिए उस स्कूल के रिक्शे की फीस का भी इंतज़ाम किया गया जो हर माह 60 रुपए थी. यह मेरे परिवार के लिए एक बड़ा बोझ था, क्योंकि पिताजी सिर्फ़ ढाई हज़ार रुपए प्रतिमाह कमा पाते थे.

निजी स्कूल में मेरे जाने के लिए जूते आए, ड्रेस आई, अलग-अलग सब्जेक्ट की कॉपियां आईं. उनमें सबसे पहले मैंने जूते पहने. मुझे बड़ी खूशी मिली. मैं घूम-घूम कर सबको जूते दिखा रहा था. मेरी वो खुशी मेरे भाई की चिढ़ की वजह बन गई थी. शुक्र है कि उसने जूते काट नहीं दिए थे. करीब एक ही उम्र के होते हुए उसके पास हवाई चप्पल भी नहीं थी और मेरे पास जूते थे. लेकिन इस गैरबराबरी की समझ उस वक़्त नहीं थी. तब अपनी सुविधाओं पर मज़ा आ रहा था. आज, आपकी खुशी सिर्फ़ इसी से तय नहीं होती कि आपके पास कोई चीज़ है, वह इससे भी तय होती है कि कितने लोग उस चीज़ से वंचित हैं. दूसरों को अपने वैभव का अहसास कराना खुशी की बुनियादी शर्त बना दी गई है.

सनराइज़ पब्लिक स्कूल में नई सामाजिक सतहों से पहचान हुई. जब हम सरकारी स्कूल में पढ़ते थे तो वर्ग का अंतर समझ में नहीं आता था. वहां कोई ड्रेस नहीं होती थी और सब अपने कपड़े पहन कर आते थे. निजी स्कूल में ड्रेस थी. लोग उल्टी बात करते हैं कि यूनिफॉर्म से वर्ग नहीं पता चलता. असल में यूनिफॉर्म से ही क्लास पता चलती है.

बच्चों को कोई भी कपड़ा पहना कर भेज दीजिए, वे उसे खेल कर गंदा कर देते हैं. जो लोग ड्रेस के कई सेट खरीद पाते थे सिर्फ़ उन्हीं की ड्रेस हर रोज़ साफ़ होती. हमारे पास एक ही ड्रेस होती और शुक्रवार तक आते-आते मेरे कपड़े की हालत ख़राब हो जाती और उसमें से बदबू आने लगती. इस बात का अंदाज़ा मां को भी नहीं था. घर में मैं पहला बच्चा था, जो निजी स्कूल में गया था. इसलिए किसी को अंदाज़ा नहीं था कि निजी स्कूल में किन बातों का खयाल रखना होता है.

Downloaded from PDFmaza.com

सरकारी स्कूल में किताबें हिंदी में होतीं. मां खाना बनाते वक़्त मुझे पढ़ा दिया करती थीं. लेकिन मेरे निजी स्कूल में जाने के बाद मां ऐसा नहीं कर पातीं. वहां डायरी मिलती, होमवर्क होता, क्लास वर्क होता था, उसकी अलग-अलग कॉपी होती थी. हिंदी और संस्कृत को छोड़ कर सारी किताबें अंग्रेज़ी में होतीं.

इसने हम मां-बेटे के रिश्ते के बीच एक अजीब-सी कशमकश पैदा कर दी. मैंने मां से कहना शुरू कर दिया कि 'तुम्हें क्या पता है? तुम कुछ नहीं जानती हो. तुम तो सरकारी स्कूल में पढ़ी हो. मैं प्राइवेट स्कूल में पढ़ रहा हूं.' इसी तरह की बातें. भाइयों से भी मेरा व्यवहार उग्र हो गया था और मैं उन्हें अंग्रेज़ी की धौंस दिखाने लगा था. मां मुझे मारती नहीं थीं, पापा घर पर रहते नहीं थे. मुहल्ले में मेरी बड़ी अच्छी छवि थी. इन सबने मुझमें एक अहंकार तो भर ही दिया था.

मैं मां को घुमा सकता था, और अपने आसपास के बच्चों पर धौंस जमा सकता था, लेकिन अपने स्कूल के बच्चों पर रोब नहीं जमा सकता था. वहां वर्ग के आधार पर मैं खुद को सबसे अलग-थलग पाता. वहां आने वाले बच्चों के पास अच्छे कपड़े, अच्छे जूते, अच्छे मोज़ों के कई सेट होते. सब साफ़-सुथरे दिखते. वे फुल पैंट पहन कर आते थे, जबकि मेरे जैसे गरीब बच्चे हाफ पैंट पहन ही स्कूल जाते थे, क्योंकि एक फुल पैंट के कपड़े में दो हाफ पैंट बन जाते हैं. जीवन में पहली बार मैंने फुलपैंट दसवीं कक्षा में पहनी, जब अपने सरकारी उच्च विद्यालय के स्कूल यूनिफॉर्म के रूप में फुलपैंट मिली थी.

लेकिन उस निजी स्कूल में चीज़ें हर रोज़ मुझे अलगाव में डालने वाली थीं. छोटे-छोटे बच्चे मफ़्लर लेकर आते, जो काफी महंगा आता था. सिर्फ़ वही लोग मफ़्लर इस्तेमाल कर पाते जो उसे खरीद पाते या जिनके घरों की महिलाएं मफ़्लर बुन पाती थीं. मेरी मां ने मुझे टोपी बुन कर दी, और जब मैं पहली बार उसे पहन कर गया तो बच्चे मेरी टोपी उतार कर गेंद की तरह उछालने लगे थे. मुझे बहुत शर्मिंदगी महसूस हुई कि अपने सरकारी स्कूल का मैं शेर था, यहां आकर किस तरह भीगी बिल्ली बन गया था.

पहली बार मुझे इसका अनुभव करना पड़ रहा था कि कमज़ोर छात्रों को किन चीज़ों का सामना करना पड़ता है. बच्चे सिर्फ़ अच्छा पहनते ही नहीं थे, उन्हें लाने-ले जाने के लिए उनके घरों के लोग मोटरसाइकिल और कार से आते. एक अलग ही दुनिया थी. इसके पहले मैंने गांव को भी ठीक से नहीं

Downloaded from PDFmaza.com

जाना था. मेरी दुनिया अपने मुहल्ले तक ही सीमित थी. लेकिन अब मैं अपने पूरे गांव से रू ब रू हो रहा था. पहली बार मैं पक्के मकानों और खपरैल के कच्चे-पक्के घरों में रहने वालों के बीच के फर्क को महसूस करने लगा था. सड़कों पर गाड़ियों के चलने में वक़्त की रफ्तार को आंकने लगा था. अलग-अलग स्तरों पर ज़मीनी फर्क की छाप मन पर अंकित हो रही थी.

उन शुरुआती दिनों ने भविष्य में मेरे अनुभवों की रफ्तार तय कर दी थी. कमज़ोर आर्थिक स्थिति की वजह से मैं छात्रों के बीच पहले ही शर्मिंदा था. जल्दी ही उस चीज़ में मेरा आत्मविश्वास डगमगा गया, जिसमें हमेशा मैं पक्का रहा था- वह थी मेरी पढ़ाई. नए स्कूल में मेरा दूसरा ही दिन था कि ज़िंदगी में पहली बार स्कूल में मेरी पिटाई हो गई. अंग्रेज़ी की क्लास में टीचर ने मुझे खड़े होकर रीडिंग देने के लिए कहा. पाठ था: 'द रियल प्रिंसेज़'. पढ़ने में एक जगह मैं थोड़ा लड़खड़ा गया और टीचर ने मेरी पिटाई कर दी.

तीसरी शर्मिंदगी का रिश्ता सनराइज़ के सांस्कृतिक कायदों को लेकर मेरी समझ से था. अपने पुराने स्कूल में मैं कविता पाठ करने वाला, गीत गाने वाला एक अच्छा छात्र हुआ करता था. नए स्कूल में फाइन आर्ट्स के पीरियड में मैडम ने हर बच्चे से गीत सुनाने के लिए कहा. अंग्रेज़ी की क्लास की शर्मिंदगी की भरपाई करने के लिए मैंने सबसे पहले हाथ उठा दिया. मैंने एक देशभक्ति गीत गाना शुरू किया: 'मेरा रंग दे बसंती चोला माए रंग दे बसंती चोला.'

पूरी क्लास में ठहाके गूंज उठे.

मैडम ने कहा, 'क्या माई-बाप कर रहे हो? जाओ, जाकर बैठ जाओ.'

इसके बाद अगला लड़का आया, जिसने मोहरा फिल्म का मशहूर गीत, 'ना कजरे की धार ना मोतियों का हार' गाया. मैडम बहुत खुश हुईं, जबकि मैं हैरान था. तब तक मेरी धारणा यह थी कि स्कूल में फिल्मी गीत गाना ग़लत बात है.

यह सब समझना मुश्किल था. फाइन आर्ट्स की क्लास में 'ना कजरे की धार' गाया जा सकता था, लेकिन लड़के-लड़कियों का (जो क्लास में अलग-अलग बैठते थे) आपस में बात करना एक असामान्य बात थी. असल में इसका मज़ाक उड़ाया जाता था. स्कूल का यह माहौल, जिसमें रूढ़िवादी सोच और आधुनिकता का ऐसा घालमेल था, मेरे मध्यवर्गीय देहाती परिवार या सरकारी स्कूल के माहौल से भी मुश्किल था.

Downloaded from PDFmaza.com

अपनी निजी कमज़ोरियों से छुटकारा पाने में मुझे एक साल लग गया. मेरी टोपी और हाफ पैंट तो नहीं बदले, लेकिन पढ़ाई-लिखाई, साहित्यिक और सांस्कृतिक गतिविधियों में बेहतर करके मैं इसकी भरपाई करने लगा था. लेकिन इसे हासिल करने तक वो पहला साल काफी मुश्किलों के साथ गुज़रा. उस साल 12 दिसंबर को स्कूल की स्थापना की वर्षगांठ पर होने वाले सालाना उत्सव में मुझे किसी भी चीज़ के लिए नहीं चुना गया: न गीत में, न भाषण में.

लेकिन सबसे दुखी कर देने वाली बात थी मेरा रिज़ल्ट. मैं बहुत हसरत से रिज़ल्ट सुनने के लिए गया था. साल भर भारी बैग ढोने के बाद एक दिन खाली हाथ स्कूल जाकर नतीजे सुनने की खुशी थी, क्योंकि रिज़ल्ट के लिए पढ़ने की ज़रूरत नहीं थी. आम तौर पर मैं किताबों से भरा हुआ बैग लेकर स्कूल जाता था. उस दिन महसूस होने वाला हल्कापन मेरी खुशी को बढ़ा रहा था. लेकिन रिज़ल्ट सुनते ही मैं निराश हो गया. पहली बार मैं क्लास में पांचवें स्थान पर आया था, जबकि मैं पहले तीन में जगह पाने की उम्मीद लगाए हुए था.

रिपोर्ट कार्ड लेकर मैं घर आया. जब मैं घर पहुंचा मेरी मां कपड़े धो रही थी. आज सुबह स्कूल जाते वक़्त मेरा उससे थोड़ा झगड़ा भी हो गया था.

सवेरे मैं बिना नहाए स्कूल की ड्रेस पहन कर जाने लगा था. इस पर मां नाराज़ हो गई थीं कि मैं दूसरों की मेहनत को नहीं समझता. मुझे नहा कर ड्रेस पहननी चाहिए क्योंकि उसे धोने में मेहनत और पैसा लगता है. नील डालना पड़ता था. 'आया नया उजाला चार बूंदों वाला' का इस्तेमाल हम गरीब लोग नहीं कर पाते थे. हमारे लिए पाउडर वाला खुला नील था, जिसका इस्तेमाल करने में ज़्यादा सावधानी बरतनी पड़ती थी क्योंकि ये कपड़ों पर धब्बे छोड़ देता थी. यह सब मेहनत मां को करनी पड़ती थी.

स्कूल रिक्शा चलाने वाले भैया आ गए थे और दूर से ही मुझे पुकार रहे थे, 'कन्हैया जी, कहां हैं. चलो टाइम हो गया. लेट हो रहा है.'

जाते हुए अपनी पीठ के पीछे अपनी मां को बोलते हुए सुना, 'नहाए-धोए नहीं, फूच बाबू बन कर चल दिए.'

मेरे ढीठ रवैए से मां दुखी रहती थीं और सुबह की नाराज़गी कुछ ज़्यादा ही तीखी थी. रिपोर्ट कार्ड लेकर मैं लौटा तो मां ने पूछा, 'क्या हुआ?' इसमें जो व्यंग्य की धार थी, उसे मैं आज तक नहीं भूल पाया हूं. और जब तक मुझे

Downloaded from PDFmaza.com

यह बात याद रहेगी, मेरे पांव ज़मीन पर टिके रहेंगे - परिवार पहली पाठशाला और मां पहली शिक्षक होती है.

मां को ये अंदेशा था कि मेरा जो रंग-ढंग बदला है उसका पढ़ाई पर अच्छा असर नहीं पड़ेगा. जो भी हो, वो एक ऐसी महिला थीं जो परिवार की देख-रेख कर रही थीं, बच्चे पाल रही थीं और घूंघट डाल कर स्कूल भी जा रही थीं. उन्हें पढ़ाई की अहमियत पता थी.

मैंने बहुत भारी मन से कहा, 'फिफ्थ.'

'फिफ्थ तो ऐसे बोल रहे हो जैसे टॉप किए हो.'

मेरे पास कोई जवाब नहीं था. मेरी मां ने कहा कि अब तुम्हें अपनी असली स्थिति पता चल गई. 'तुम पहले सरकारी स्कूल में पढ़ते थे, जहां पढ़ाई-लिखाई का कोई हिसाब नहीं था. अब निजी स्कूल में तुम्हें अपनी जगह समझ में आ गई.'

यह सीख बहुत कड़ी थी. अगले साल, मेरी क्लास में मेरे जितने अंक किसी के भी नहीं आए थे. लेकिन यह बात तो मुझे बाद में पता लगी. पिछले साल के रिज़ल्ट का डर मेरे मन में इतना गहरा था कि मैं उस साल रिज़ल्ट लेने ही नहीं गया.

मां ने रिज़ल्ट के बारे में नहीं पूछा. पापा उन दिनों गिट्टी खरीदने कोडरमा (जो तब बिहार में था और अब झारखंड में है) जाया करते थे, जिसे बाद में स्थानीय बाज़ार में बेच देते थे. इसके लिए वे कई दिनों तक बाहर रहा करते थे. लौटने के बाद पापा ने रिज़ल्ट के बारे में पूछा. मैंने उन्हें बता दिया कि मैं रिज़ल्ट लेने नहीं गया था. पापा ने किसी से बाइक मांगी और मुझे बिठा कर ले गए. स्कूल तो बंद हो गया था, लेकिन उसके प्रिंसिपल रामकुमार जी ऑफिस में थे. मुझे देखते ही रामकुमार जी ने ज़ोर से कहा, 'अरे आओ, आओ, कन्हैया आओ.' उनका इतना प्रेम देख करके मेरा संदेह और डर और भी गहरा हो गया.

लेकिन पापा ने मुझे उबार लिया. उन्होंने बात बदलते हुए कहा कि वे कई महीनों से फीस नहीं भर पाए थे, इसलिए वे फीस भरने आए थे. पापा ने फीस चुकाई, प्रिंसिपल ने ही रसीद काट कर दे दी. हालांकि वो निजी स्कूल था, जो शहरी स्कूलों की नकल करने की कोशिश करता था, लेकिन संसाधनों के मामले में उसकी सीमा थी. कम से कम इस मामले में गांव के

Downloaded from PDFmaza.com

पब्लिक स्कूल, सरकारी स्कूलों से बहुत अलग नहीं होते हैं. बस उनका नाम ही 'पब्लिक स्कूल' या 'कॉन्वेंट' होता था.

जब चलने लगे तो पापा ने मुद्दे की बात छेड़ी. उन्होंने जानना चाहा कि मेरा रिज़ल्ट क्या आया था. प्रिंसिपल की आंखों में फिर से चमक देख कर मैं दोबारा सहम गया था. लेकिन उन्होंने मुझे राहत पहुंचाते हुए बताया कि मैंने क्लास में टॉप किया था.

यही नहीं, मैंने उस साल के 12 दिसंबर वाले सालाना आयोजन की ज़्यादातर प्रतियोगिताओं में भी टॉप किया था. कोई ऐसा प्रोग्राम नहीं था, जिसमें मैंने भाग नहीं लिया हो- गाना, भाषण, नाटक, लेख - मैं हर जगह था.

किसी इंसान की प्रतियगिता सिर्फ़ अपने से होनी चाहिए. दो अलग-अलग इंसानों के बीच में कोई सचमुच की प्रतियोगिता नहीं हो सकती, क्योंकि उनकी स्थितियां और उनको हासिल हुए मौके समान नहीं हो सकते हैं. इन नतीजों ने मेरा काफी हौसला बढ़ाया था. अच्छे नतीजों के पीछे एक और वजह थी - मेरी अंग्रेज़ी सुधर गई थी. परमानंद जी के पास अब समय नहीं रहता था. इसके अलावा उन्हें सनराइज़ पब्लिक स्कूल का सिलेबस पढ़ाने में मुश्किल भी आ रही थी. इसलिए उन्होंने एक दूसरे टीचर को तय किया. चीज़ें अच्छी होती दिख रही थीं.

.

मैं जवाहर नवोदय विद्यालय की प्रवेश परीक्षा के बारे में भूला नहीं था. मैंने फॉर्म भरा था, लेकिन मैंने पाया कि मैं परीक्षा नहीं दे पाऊंगा. यह प्रवेश परीक्षा सिर्फ़ सरकारी स्कूलों के बच्चे ही दे सकते थे. इंतज़ाम यह किया गया था कि मैं सनराइज़ पब्लिक स्कूल में पढ़ूंगा, लेकिन मेरा नाम मेरे पुराने सरकारी स्कूल में चलता रहेगा. उसकी प्रिंसिपल उर्वशी मैडम चाहती थीं कि मैं जवाहर नवोदय विद्यालय में चुना जाऊं, इससे स्कूल का नाम होता. लेकिन इसी दौरान बिहार सरकार ने शिक्षकों का व्यापक पैमाने पर तबादला कर दिया. उर्वशी जी भी उस स्कूल से चली गईं. उनकी जगह पर जो नई प्रिंसिपल आईं, वो इस मामले में सख्त थीं और मेरे लिए नियमों में छूट देने को तैयार नहीं थी.

फॉर्म भरकर भी परीक्षा नहीं देने का वो सिलसिला मेरे जीवन का ढर्रा बन जाने वाला था. मैट्रिक करने के बाद नौसेना में जाने के लिए फॉर्म भरा और परीक्षा नहीं दे पाया. यही कहानी बरसों बाद एमए के दौरान भी दोहराई गई,

Downloaded from PDFmaza.com

जब मैंने यूपीएससी का फॉर्म भरा और परीक्षा नहीं दे पाया. लेकिन जब भी ऐसा हुआ, मेरी ज़िंदगी ने एक तीखा मोड़ लिया, एक बड़ा बदलाव आया. मेरी ज़िंदगी का पहला ऐसा बदलाव मुहाने पर खड़ा था.

जवाहर नवोदय जाने का सपना ख़त्म हो चुका था. पिताजी की जैसे कमर ही टूट गई थी. उन्होंने कई बरसों से यह उम्मीद लगा रखी थी कि मेरा दाखिला इस प्रतिष्ठित स्कूल में हो जाएगा. सनराइज़ एक कामचलाऊ समाधान था; यह मेरे परिवार की हैसियत से बाहर था. मेरी अच्छी पढ़ाई के लिए पिताजी ने दूसरे स्कूलों के बारे में पता लगाना शुरू किया और शहरों में रहने वाले रिश्तेदारों से बात करने लगे, जिनके यहां रह कर मैं पढ़ सकता था. केंद्र सरकार की नौकरी कर रहे किसी जान-पहचान वाले ने मुझे अपना 'बेटा' बनाना कबूल नहीं किया ताकि मेरा दाखिला केंद्रीय विद्यालय में हो जाए.

इसलिए मैं सनराइज़ में ही रहा. परिवार की आर्थिक स्थिति बिगड़ते जाने से सुविधाएं धीरे-धीरे घटती जा रही थीं. एक साल बीतने के बाद रिक्शा छुड़ा दिया गया था, क्योंकि उसका खर्च पिताजी के बूते से बाहर का था. अंग्रेज़ी का ट्यूशन भी छुड़ा दिया गया, जिसने न सिर्फ़ मेरी जानकारी बढ़ाई थी, बल्कि मुझमें आत्मविश्वास भी भरा था. साफ़ होता जा रहा था कि मुझे वापस सरकारी स्कूल में जाना पड़ेगा. इन सारे तनावों से गुज़रते हुए मैंने सातवीं कक्षा की परीक्षा पास कर ली. सुख और दुख से भरे उन दिनों ने मुझे बड़ा हो जाने पर मजबूर किया. मैं नहीं देख पा रहा था कि इस पढ़ाई से मेरा कोई भविष्य बनने जा रहा था. मैं अब तक जो भी देखता और अनुभव करता आया था, उस पर विचारों की परत चढ़ने लगी थी. जाति, धर्म, पितृसत्ता, अमीरी-गरीबी – हर चीज़ को लेकर विचार अब एक शक्ल लेने लगे थे.

मैंने सीखा कि मेरिट कुछ नहीं होता है. अगर मौका मिले तो हर कोई गा सकता है, नाटक कर सकता है, पढ़ सकता है और अच्छा कर सकता है. अहम बात है मौके का मिलना. मैंने देखा था कि जिसको मौका मिलता है, वो आगे बढ़ जाता है. जिसको नहीं मिलता, वो पीछे रह जाता है.

मुझे कुछ मौके मिल पाए, इसलिए मैंने अच्छा किया था. लेकिन मैं अपने मौकों को ख़त्म होते भी देख रहा था. और मेरे लिए कोई उम्मीद नहीं थी. मैं देख रहा था कि मुझ से कमज़ोर लड़के अपने मां-बाप के पैसों के बूते अच्छे स्कूलों में पढ़ने लगे थे. इसमें मेरिट कहां थी? बस संसाधनों का सवाल था.

Downloaded from PDFmaza.com

मेरा एक साथी था जो पढ़ने में बहुत अच्छा था और हमेशा उसके साथ अच्छे नतीजों को लेकर मेरी होड़ रहती थी. उसकी लिखावट बहुत सुंदर थी और हमेशा उसे अच्छे अंक आते थे. लेकिन आज वो गांव के बाज़ार में पंक्चर बनाने का काम करता है. ऐसा क्यों हुआ, इसे समझना बहुत मुश्किल नहीं है. वह संसाधनों से वंचित, बिना अवसरों वाला एक दलित लड़का था. उसके पिताजी बस कंडक्टर थे और एक एक्सीडेंट में उनकी मौत हो गई. इसके बाद मेरा वो दोस्त किसी साइकिल की दुकान में पंक्चर बनाने लगा था.

इसके अलावा जो चीज़ें पढ़ाई जाती थीं, उनमें से काफी बेमानी लगती थीं. आख़िर हमें 'द रियल प्रिंसेज़' पढ़ाने का क्या मतलब था? हैंस क्रिश्चियन एंडरसन की इस कहानी का हमारे जीवन से कोई लेना-देना नहीं था. इस कहानी में एक राजकुमार था, जिसको यह अहंकार था कि सुख-सुविधा में उससे बढ़कर कोई नहीं था.

एक रात बारिश में एक रानी की बग्घी उसके महल के सामने आकर रुकी और सेवक ने आकर उससे कहा कि पड़ोस के राज्य की महारानी उसके महल में रात गुज़ारना चाहती हैं. राजकुमार ने उनके लिए सबसे अच्छा इंतज़ाम किया. सात गद्दे उनके बिस्तर पर लगाए गए. राजकुमार बीच-बीच में आकर देख जाता कि उन्हें कोई दिक्कत तो नहीं है.

सुबह जगने पर राजकुमार ने उनसे पूछा कि क्या उन्हें अच्छे से नींद आई. महारानी ने जवाब दिया कि उनकी कमर में दर्द हो गया क्योंकि उन्हें बिस्तर में कुछ चुभ रहा था (उन सात गद्दों में कहीं एक मटर पड़ा हुआ था). तब राजकुमार को पता चला कि वो असली राजकुमारी है क्योंकि इतने सारे गद्दों की नीचे पड़े एक मटर के दाने से भी उसकी कमर में दर्द हो गया था.

आख़िर इस कहानी का हमारे जीवन से क्या लेना था, जिसमें एक कप से दो लोग चाय नहीं पी सकते थे. जिस जीवन का मूल्य ये है कि आपके पास ज्ञान और समझ है, लेकिन अगर आपके पास मफ्लर और फुलपैंट नहीं है तो लोग आपका मज़ाक उड़ाते हैं. आप अगर लड़खड़ा कर अंग्रेज़ी पढ़ दें तो पिटाई होती है.

हमारे घर में शौचालय और नहाने का घर नहीं था. हम खेतों में शौच करने जाते और चापाकल (हैंडपंप) पर नहाते थे. घर में बिजली थी, लेकिन सिर्फ़ बल्ब और पंखा चलता था. कपड़े प्रेस करने के लिए मां कोयले के चूल्हे पर गर्म किया जाने वाला प्रेस इस्तेमाल करती थीं. ये ऐसी दुनिया थी, जिसमें

Downloaded from PDFmaza.com

सुबह का नाश्ता, रात का बचा खाना होता था: बासी भात और बासी रोटी. हमारी स्कूली किताबों में यह दुनिया कहां थी? काम की चीज़ पढ़ाई नहीं जाती और जो पढ़ाया जाता है उससे काम नहीं मिलता.

ये बातें दिमाग में घूमने लगी थीं. मैं सिलेबस से थोड़ा बाहर, ख़ास कर साहित्य की ओर मुड़ गया. प्रेमचंद मेरे पसंदीदा लेखक बन गए. राजनीति और सांस्कृतिक गतिविधियां मुझे अपनी ओर खींचने लगी थीं. मैं भारतीय जननाट्य मंच (इप्टा) की कार्यशालाओं में जाने लगा था, जहां गाना और अभिनय करना सिखाया जाता था. तब तो मुझे इसमें सिर्फ़ मज़ा आता था, लेकिन इप्टा की गतिविधियों ने मुझे वह बनने में मदद की जो मैं आज हूं.

मैं देखने लगा था कि किस तरह भ्रष्टाचार ने सरकारी कल्याणकारी योजनाओं को तबाह कर रखा था. उन दिनों हमारे गांव की दीवारों पर यह बात लिखी मिलती थी: 'छठ के चीनी, दीवाली के तेल, बोलअ हो मुखिया कहां गेल.' आम जनता के लिए सरकार द्वारा दिया जाने वाला सस्ता राशन कभी पूरी तरह लोगों तक नहीं पहुंच पाता था. मुखिया आम तौर पर दुकानदार लोगों (डीलर) से मिले होते. वे मिल कर चीनी, तेल और दूसरा सामान ब्लैक में बेच देते, जो राशन कार्ड वालों को बांटने के लिए होता था. सिर्फ़ उन्हीं के हाथ कुछ लगता, जो मुखिया से करीब थे.

वही दौर था जब भाजपा जड़ें जमाने लगी. 1996 के आम चुनावों में वह अकेली सबसे बड़ी पार्टी थी, हालांकि वो सरकार नहीं बना पाई थी. पैसे की ताक़त में उसका मुकाबला कभी भी कम्युनिस्ट पार्टी या कांग्रेस नहीं कर पाई. भाजपा के प्रचार अभियानों में मफ़्लर, टोपी, बिल्ला होता. गाड़ियों से पर्चे फेंकते हुए भाजपाई गुज़रते और बच्चे गाड़ियों के पीछे पीछे पर्चे लूटते दौड़ा करते थे.

इसके उलट सीपीआई के लोग दीवारों पर नारे लिखते और कांग्रेसी लोग पोस्टर लगाया करते. हालांकि कांग्रेस के प्रति नाराज़गी लोगों में अभी भी काफी थी. चुनावों के दौरान कांग्रेसियों को देखते ही नारा लगता था, 'गली गली में शोर है, इंदिरा गांधी चोर है.' बचपन के उन दिनों में मैं यह नारा सुना करता था.

कुछ बातें अलग से याद रह गईं. 1998 का साल था. केंद्र में संयुक्त मोर्चे की सरकार थी. तब के गृह मंत्री का इरादा कॉमरेड चंद्रशेखर का पुराना घर देखने का था और उन्होंने उस बंद पड़े घर को ऊपर से देखने का फैसला किया. मेरे गांव में पहली बार हेलीकॉप्टर इतने नीचे उड़ान भर रहा था और

Downloaded from PDFmaza.com

हमारे घरों के छप्परों के ऊपर तेज़ आवाज़ करते हुए घूम रहा था. हम उत्साह में उसकी एक झलक देखने के लिए बाहर दौड़ पड़े.

गांव में आम चुनावों के लिए बड़ी-बड़ी रैलियां हो रही थीं. और मैं भी उनमें भाग ले रहा था. मुझे याद है कि मेरे इलाके में सुषमा स्वराज और शत्रुघ्न सिन्हा चुनाव प्रचार के लिए आए थे.

वोट के दिन मेलों की तरह होते. सज-धज कर लोग गाड़ियों पर सवार होकर वोट देने जाते. उन्हें देख कर हमारा मन भी बूथ पर जाने का करता. कई बार मैं अपनी दादी के साथ बूथ तक गया था. लेकिन ज़्यादातर हमें वहां जाने नहीं दिया जाता, क्योंकि उन दिनों बूथ पर अक्सर गोलियां चलती थीं.

इस उम्र तक मुझे अपनी धार्मिक पहचान का अहसास गहराता जा रहा था.

पहली बार अपने धर्म के बारे में मैंने तब जाना था, जब दूसरी कक्षा में एक लड़के के बारे में मुझे बताया गया कि वह मुसलमान है. फौरन मेरे मन में यह सवाल उठा कि अगर वो मुसलमान है, तो फिर मैं क्या हूं. जवाब मिला: हिंदू. वो हमारे स्कूल का अकेला मुसलमान लड़का था. वो हमारा सीनियर था और मुझे उसकी याद इसलिए भी रह गई कि वो फुटबॉल बहुत खेलता था. वो क्रिकेट और टेनिस के लोकप्रिय होने से पहले के दिन थे, जब बच्चे फुटबॉल, वॉलीबॉल, कबड्डी, छुआ-छुई खेला करते थे. वो लड़का बहुत ऊंचे किक लगाता था जिसकी चर्चा पूरे स्कूल में रहती. लोग यह कहते कि वो मुसलमान है और मांस खाता है इसलिए उसमें बहुत ताक़त है. मुझे इस पर बड़ी हैरानी होती कि अगर मांस खाने से ताक़त मिलती है तो सब मांस क्यों नहीं खाते? मेरे परिवार में मांस खाया जाता था, लेकिन ज़्यादातर परिवारों के लोग मांस नहीं खाते थे.

अपनी ज़िंदगी के दूसरे मुसलमान से मेरी मुलाकात तीन साल बाद हुई, जब मेरा नाम सनराइज़ पब्लिक स्कूल में लिखाया गया. छात्रों को लाने-ले जाने के लिए स्कूल से जो रिक्शा आता था, उसे मुहम्मद कासिम चलाते थे. पुराने स्कूल में मेरी समझ से मुसलमान वो होते हैं जिनकी दाढ़ी हो, जो टोपी पहनते हों और मांस खाते हों. अब यह मालूम हुआ कि मुसलमान रिक्शा भी चलाते हैं. लेकिन रिक्शा तो दूसरे लोग भी चलाते हैं, उनमें फर्क क्या है?

यह भी जल्दी ही हमें पता लग गया. गर्मी के मौसम में स्कूल मॉर्निंग में खुलने लगे जब सुबह-सुबह क्लासेज़ शुरू हो जातीं और दोपहर तक छुट्टी दे

Downloaded from PDFmaza.com

दी जाती. शुक्रवार के दिन बाक़ी बच्चे तो छुट्टी होते ही आराम से अपने रिक्शों पर सवार होकर चले जाते, हमें अपने रिक्शे का इंतज़ार करना पड़ता था. तब एक नए अंतर का पता लगा - मुसलमान मस्जिद जाते हैं और नमाज़ पढ़ते हैं.

ये फर्क धीरे-धीरे साफ़ होने लगा था: ज़्यादातर हिंदू मांस नहीं खाते, मुसलमान मांस खाते हैं. हम मंदिर जाते हैं, मुसलमान मस्जिद जाते हैं. उनका नाम हमारे नाम से अलग होता है. ये तीन बातें मोटे तौर पर हमें समझ में आने लगी थीं. आगे चल कर इसमें एक और बात जुड़ी.

पापा के एक बेहद जिगरी दोस्त थे मुहम्मद जलालुद्दीन, जिन्हें मैं जलाल सर कहता था. वे बहुत संपन्न थे. अब तक मैं मुसलमानों की दो पहचानें देखी थीं. मैंने जाना कि मुसलमान संपन्न भी होते हैं, पढ़े-लिखे होते हैं, स्कूल में पढ़ाते हैं. जलाल सर के घर के लोग सऊदी अरब में रहते थे, महंगी घड़ियों, रेडियो, वॉकमैन और टॉर्च का इस्तेमाल करते थे. वे हमारे लिए जो चॉकलेट लाते थे, वो भी सबसे अलग होती. हमारे ज़्यादातर गरीब रिश्तेदार लेमनचूस ले आते थे, जिसे हम नेमनचूस कहा करते थे. कुछेक संपन्न रिश्तेदार सबसे पसंदीदा मॉर्टेन चॉकलेट लाते थे. लेकिन जलाल सर किसमी बार लेकर आते थे.

जब वे हमारे घर आते तो उन्हें घर के भीतर बिठा कर खाना खिलाया जाता और खाने में अक्सर मांस-मछली होती. इस पर दादी बहुत नाराज़ होतीं कि देवता-पितर का घर भ्रष्ट हो रहा है. हमारा कोई पूजा घर नहीं था, उसी कमरे में बाज़ार में दो-दो रुपए में मिलने वाले कैलेंडर को ही फ्रेम कर टांग दिया गया था, जिसे दादी देवता-पितर कहतीं. उनको लगता कि उनकी जगह भ्रष्ट हो रही है. इसके बावजूद जलाल सर के साथ रिश्ता बना रहा.

वे उसी तरह आते रहते. आगे चल कर जब मैं पटना आया, तो मैं उनके घर गया और उनके परिवार के साथ वक़्त बिताया.

धर्म से ज़्यादा गहरा था जाति का बोध. दिन पर दिन जाति के बारे में समझ और गहराती गई. और ऐसा स्कूल में नहीं, उसके बाहर हुआ.

जाति से मेरा पहला परिचय रंगों के ज़रिए हुआ. हम बच्चों को चटख रंग पसंद थे, लेकिन उन्हें 'शुदर' (शूद्र) का रंग कहा जाता था. बाद में मुझे हैरानी होती कि जिन्हें शूद्र कहा जाता है, वे भी यही बात क्यों बोलते हैं. यह बात उससे भी बाद में पता लगी कि इसे संस्कृतिकरण का असर कहा जाता है.

Downloaded from PDFmaza.com

परमानंद जी का ट्यूशन छूटने के बाद मैं जिन शिक्षक से अंग्रेज़ी का ट्यूशन पढ़ने लगा था, वे एक दलित थे, हालांकि तब मैं यह बात नहीं जानता था. जिस जातिवादी ग्रामीण समाज में मैं था, उसमें एक दलित का अंग्रेज़ी पढ़ना और पढ़ाना एक बड़ी बात थी.

हमारे घर का छप्पर खपरैल का था. जब पहली बार मैं दिल्ली आया तो बारिश में लोगों को खुशी से नहाते देख कर मैं हैरान रह गया था. बारिश हमारे लिए खुश होने वाली बात नहीं थी, क्योंकि इसके शुरू होते ही हमारी दुर्दशा शुरू हो जाती थी.

रास्ता छोटा करने के लिए हम खेतों के रास्ते स्कूल जाते और बारिश के दिनों में कीचड़ में सन जाते थे. घर पर खाने की दिक्कत हो जाती. जलावन गीला हो जाता और हमें रात में भी सत्तू खाकर गुज़ारा करना पड़ता. पूरे कमरे में पानी टपकता रहता. इतने बर्तन नहीं थे कि टपकती हुई सारी जगहों पर उन्हें रखा जा सके. इसलिए बारिश मुझे कभी अच्छी नहीं लगती थी. यह तो बहुत बाद में दिल्ली आकर जाना कि बारिश आने पर ख़ुश हुआ जा सकता है, जब घर में पानी न टपक रहा हो.

खपरैल के छप्पर को हर साल मरम्मत की ज़रूरत पड़ती है. हमारे घर की मरम्मत करने के लिए आते थे बटोरन पासवान. वे मेरे दादाजी के दोस्त थे और मैं उन्हें हमेशा दादाजी से जोड़ कर देखता था. इसलिए जब भी वे आते, मैं खड़ा होकर उन्हें बैठने के लिए कहता था.

बटोरन जी का कोई एक पेशा नहीं था. वे अलग-अलग समय पर अलग-अलग काम करते हुए दिखते थे. गेहूं कटाई के वक़्त खेतों में मज़दूरी करते थे. दूसरे वक़्त में वे रिक्शा चलाते थे. बरसात में लोग उन्हें छप्पर मरम्मत करने – छप्पर छाड़ने – के लिए बुलाते थे. इन तीनों ही भूमिकाओं में उनका मेरे परिवार के साथ गहरा ताल्लुक था.

मेरे परिवार के पास ज़मीन कम थी, जो दादाजी के बाद हिस्सों में बंटते-बंटते लगभग न के बराबर रह गई थी. उनके वक़्त तक खेत की ज़मीन अच्छी थी और बटोरन जी उनमें काम करते थे. फिर जब दादाजी को बाज़ार जाना होता या हमें पोलियो के टीके लगवाने होते तो वे हमें अपने रिक्शे पर ले जाते थे. दादाजी के निधन के बाद वे सिर्फ़ एक ही बार घर आते, जब छप्पर की मरम्मत करनी होती.

जब वे आते, मैं मां से उनके लिए चाय बनाने को कहता था. दादी की तुलना में मां ज़्यादा उदार थीं. दादी इस बात से नाराज़ होतीं कि मैं सीधे बटोरन

Downloaded from PDFmaza.com

जी का प्याला लाकर चूल्हे के पास रख देता हूं, जैसा कि मैं सबके साथ करता था. इससे मुझे हैरानी होती. हैरानी तब भी होती, जब वे आकर खुद ही ज़मीन पर बैठ जाते थे. मैं उन्हें उठा कर ऊपर बिठा देता था.

छोटे-छोटे बच्चे भी उन्हें छेड़ते हुए 'ऐ बटोरन' कह कर बुलाते जबकि वे बच्चों को भी आदर से बुलाते थे. भोज में वे और उनकी जाति के लोग सबसे आख़िर में आकर खाते. खाना खाने के बाद अपना बर्तन खुद धोकर देते थे.

ये बातें मुझे बचपन से बहुत कचोटती थीं. मैंने कभी अपने चाचाओं को या दूसरे लोगों को अपना जूठा बर्तन धोते नहीं देखा. इस कचोट के पीछे तब वैचारिक बुनियाद उतनी नहीं थी, जितना आपसी जुड़ाव था. और यह जुड़ाव बटोरन पासवान से तो था ही, उनसे भी ज़्यादा उनके पोते से था, जिसके साथ मैं दरवाज़ों पर लटक कर चंद्रकांता देखता था.

गांव में एक पुस्तकालय था: कॉमरेड चंद्रशेखर स्मारक पुस्तकालय. गांव भर के बूढ़े-बच्चे आते, किताबें पढ़ते, कैरम खेलते. बड़ों और बच्चों के लिए कैरम अलग-अलग थे. पुस्तकालय का हॉल एक टीवी रूम बन जाता और गांव भर के लोग धारावाहिक देखने के लिए आ जुटते. यही वो दौर था जब टीवी ने राम को सबसे लोकप्रिय देवता बना दिया था - धार्मिक रूप से भी और राजनीतिक रूप से भी.

वहां जमा लोगों में आप गांव की सामाजिक संरचना को समझ सकते हैं. लोगों की जाति और आर्थिक स्थिति तय करती कि टीवी से वे कितने दूर या करीब बैठेंगे. ताक़तवर लोग टीवी के नज़दीक बैठते थे और जिनके पास जाति और पैसे की ताक़त नहीं थी, वे सबसे पीछे की ओर होते थे. कुछ लोगों के अपने घरों में भी ब्लैक एंड व्हाइट टीवी हुआ करता था और उनके यहां भी दूसरे लोग टीवी देखने पहुंचते थे. टीवी, फोन और कारें सिर्फ़ इस्तेमाल की वस्तु नहीं थीं, बल्कि वो लोगों को हीनता का अहसास कराने का साधन भी थीं.

यहां भी वही होता. जिन लोगों के यहां हम टीवी देखने जाते थे, उनकी दोस्ती हम जैसे गरीब परिवारों के बच्चों से नहीं, बल्कि टीवी वाले परिवारों से ही होती थी. मैं जिन लोगों के साथ खड़ा होता था, वे असल में गरीब लोग और उनके बच्चे होते थे. समाज में गरीब असल में दलित-पिछड़े होते हैं और मैंने उन्हीं के साथ दरवाज़ों-खिड़कियों के ग्रिल में लटक कर टीवी देखना शुरू किया. मैं भले ऊंची जाति का था – भले ही हमें अपने बरतन न धोने पड़ते हों – लेकिन आर्थिक हैसियत में मैं उनसे अलग नहीं था.

Downloaded from PDFmaza.com

साल 2000 था. जब पहली बार मैंने मोबाइल देखा था. गांव में एक बरात आई थी. दूल्हा दिल्ली में इंजीनियर था और उसका दोस्त मोबाइल लेकर आया था. पूरी बरात में आकर्षण का केंद्र दूल्हे के बजाए उसका वो दोस्त ही बना रहा.

मेरे आसपास की दुनिया बदल रही थी.

गांव में कम्युनिस्ट आंदोलन के प्रभाव में काफी अच्छी चीज़ें भी होती थीं. लड़के-लड़कियां साथ में कबड्डी, वॉलीबॉल, फुटबॉल खेलते थे. पुस्तकालय में बैठते थे. आंदोलन गांव की एक-एक पुरातनपंथी बात में दखल देता था. यह विधवा विवाह और अंतर्जातीय विवाह को समर्थन देता, अंधविश्वासों का विरोध करता, वैज्ञानिक बातों को बढ़ावा देता, जातीय उत्पीड़न को रोकने का काम करता. आंदोलन के असर का अंदाज़ा आप इस बात से लगा सकते हैं कि मेरी अपनी बुआ की शादी एक दलित से हुई थी. वहां कोई इज़्ज़त के नाम पर हत्या के बारे में सोच भी नहीं सकता था.

वैश्वीकरण की लहर ने इस आंदोलन को कमज़ोर कर दिया - बहुत सारी चीज़ें ख़त्म होने लगीं. पुरानी फैक्टरियां बंद हो गईं. ट्रेड यूनियन ख़त्म हो गए और पार्टी की पकड़ गांव पर कमज़ोर हो गई. एक नई तरह की राजनीति ने पैठ बनानी शुरू की, जो बाहुबल और पैसे की राजनीति थी. इसमें भाकपा पिछड़ गई थी.

निजी स्कूलों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही थी. डीएवी (दयानंद एंग्लो-वैदिक) स्कूल पहले से ही था, सेंट पॉल स्कूल, माउंट कारमेल, लेडी मरियम कॉन्वेंट खुलने लगे थे. एक ही समाज में कई तरह की पढ़ाई मिलने लगी थी. स्कूल दुकानों की तरह सजने लगे थे. इसी समाज में काफी सारे बच्चे बोरे वाले स्कूल में जा रहे थे. उनसे ज़्यादा पैसे वाले गांवों के पब्लिक स्कूलों में जाते थे. उनसे कुछ संपन्न लोगों के बच्चे शहरों के पब्लिक स्कूलों में जाते थे और उनसे भी संपन्न घरों के बच्चे और भी बड़े स्कूलों में जाते थे. उनकी बड़ी-बड़ी बसें आतीं, ऐसे स्कूल, कॉलेजों से भी बड़े होते.

रोज़मर्रा के अनुभव भी बदल रहे थे. पहले एक गैस कनेक्शन के लिए लंबी-लंबी लाइनें लगानी पड़तीं. अब कई कंपनियां आ गई थीं और गैस हाथोहाथ मिलने लगी थी. सड़कों पर पहले जहां राजदूत मोटरसाइकिल का राज था, अब तमाम दूसरे ब्रांडों की गाड़ियां दौड़ने लगी थीं. बाज़ार में नए उत्पाद आने लगे थे. पहले लोग अधिक से अधिक शर्ट पहनते थे, अब टी-शर्ट से जान-पहचान हुई. अलग-अलग ब्रांड के जूते आ रहे थे. इन सारे बदलावों के

Downloaded from PDFmaza.com

बीच, लोगों की इच्छा, आकांक्षा बढ़ रही थी और नौजवान इसमें सबसे आगे थे.

बाद में जब मैंने समाज विज्ञान पढ़ा तो मुझे कुछ और बातें भी समझ में आईं. मैंने याद किया कि किस तरह तकनीक गांव के नौजवानों में एक नई चेतना भी बना रही थी. समुदाय के जकड़नेवाले क़ायदे टूट रहे थे. सिनेमा में पड़ोसियों को प्यार करते देखकर एक ही गांव-मोहल्ले के और अलग-अलग जातियों के लड़के और लड़कियां आपस में प्यार करने लगे थे, जो कुछ बरस पहले तक सोचा भी नहीं जा सकता था.

बदलाव की यह प्रक्रिया काफी जटिल थी. एक तरफ़ उपयोग की वस्तुओं में बेशुमार इजाफा हो रहा था, कई मामलों में एक नई चेतना भी बन रही थी, लेकिन ज़मीन पर हालत बिगड़ती जा रही थी. नौजवानों के पास ढेर सारे सपने थे, लेकिन रोज़गार के मौके कम थे.

नौकरी के नाम पर स्कूल में पढ़ाने का काम मिल कर रहा था, लेकिन वह भी ठेके पर हो रहा था. स्थायी बहालियां पुरानी बात हो गई थीं. नौकरी का दूसरा सबसे बड़ा मौका सेना की नियुक्तियां थीं. गांव के नौजवान सुबह-सुबह दौड़ कर सेना की तैयारी करते थे, लेकिन भर्तियों में भी धांधली शुरू हो गई थी. किसी के नाम पर कोई और दौड़ता. नौकरी पाने के लिए लोगों को दो-दो, तीन-तीन लाख रुपए खर्च करने पड़ रहे थे. बेरोज़गारी की आशंका ने अपराधों के एक नए दौर को जन्म दिया. इलाके में सामंती ढांचे की वजह से मेरे गांव में हिंसा की एक संस्कृति हमेशा रही. हमेशा दो परिवारों में ज़मीन को लेकर विवाद रहता. कभी-कभी हम स्कूल में होते कि अचानक सामने वाले खेत में गोलियां चलनी शुरू हो जातीं. शिक्षक सारे बच्चों को एक कमरे में बंद कर देते थे.

ज़मीन के लिए हिंसा गांव के जीवन का अभिन्न हिस्सा थी और मैं इसके बारे में जानने लगा था. बड़े होते हुए मुझे यह अजीब लगता कि तकनीक आ रही थी, लोकतंत्र देश में लागू था और सामंती ताकतें अभी भी इतनी मज़बूत थीं. आज भी इसका दबदबा है. यह नहीं कहा जा सकता था कि हम सामंती समाज में रह रहे हैं, लेकिन इससे इन्कार भी नहीं किया जा सकता.

इसके अलावा, कांग्रेस राजनीति में हिंसा की संस्कृति लेकर आई थी – जिसकी वजह से हमें वोट के दिन बूथ पर नहीं जाने दिया जाता. अब यह सब कुछ और गहराता जा रहा था. पहले पढ़े-लिखे समझदार लोग गांव के पंच होते थे. वे लोगों की समस्याएं सुलझाते थे. आज बदमाश लोग पंच होते

Downloaded from PDFmaza.com

हैं. जिनके पास राइफल हो, उनको लोग समस्याएं सुलझाने के लिए बुलाने लगे थे. ये गांव में भयानक मारकाट और हिंसा का दौर था. हालत ये थी कि छोटे-छोटे बच्चे भी बंदूक लेकर घूमने लगे थे. जिस वक़्त मैंने सातवीं कक्षा की परीक्षा दी थी, मेरे गांव में एक अकेले महीने में लगभग तीस हत्याएं हुई थीं. लोगों में नशे का चलन तेज़ी से बढ़ा. पहले दो-चार लोग शराब पीते थे, अब दो-चार लोग ही थे जो शराब नहीं पीते थे.

पिताजी इसको लेकर काफी चिंतित रहते थे कि मुझे इससे कैसे दूर रखें. लेकिन उनके पास कोई चारा नहीं था. मेरी मां के दूर के एक मामाजी पास के एक स्कूल में टीचर थे. वह ज़िले के बहुत अच्छे स्कूलों में से एक था. राधाकृष्ण चमड़िया हाई स्कूल सरकारी था, लेकिन उसकी सुविधाएं किसी सेंट पॉल से कम नहीं थीं. वह मेरे घर से तीन किमी दूर था और गांव से बाहर था. पिताजी चाहते थे कि बदलते हुए हालात में मैं गांव से दूर रहूं, पढ़ने में मन लगाऊं, पिताजी ने मुझे वहां पढ़ने भेजने का फैसला किया. हालांकि वह स्कूल जहां था, वहां भी हालात वैसे ही थे, लेकिन अपने गांव से कट जाने के बाद दूसरी जगह में आसपास के माहौल से प्रभावित होने की आशंका कम थी.

इस तरह आठवीं कक्षा में मैं सरकारी स्कूल में वापस आ गया. पहले साल मैं बस से आया-गया, जिसका किराया एक तरफ़ से दो रुपए होता था. शुरू के एक महीने के बाद, मैंने बाक़ी छात्रों की देखादेखी किराया देना बंद कर दिया. छात्र कभी बस का किराया नहीं देते थे. हमारी एकता की वजह से गाड़ी वाले हमें बिना किराए के ले जाते. हम लोग तब एक डायलॉग मारते थे कि गाड़ी सिर्फ़ तेल से नहीं चलती, उसमें पानी (रेडिएटर) भी लगता है. बस वाले तेल का पैसा बाक़ी सवारियों से वसूलें, हम पानी पर चलते हैं. किराए के लिए जो चार रुपए घर से मिलते थे, उनसे हम बारी-बारी रोज़ गोलगप्पे खाया करते थे.

सनराइज़ के उलट, इस स्कूल में घुलने-मिलने में मुझे आसानी हुई. यहां मेरे जैसे परिवारों के बच्चे थे. यहां मैं अलग-थलग महसूस नहीं करता. यहां मेरे कपड़े या रहन-सहन पर कोई मज़ाक नहीं करता और मैं आराम से यहां घुलमिल गया.

इसके अलावा वहां की पढ़ाई अच्छी थी. अभी भी सरकारी स्कूलों के पुराने टीचर हाथ में किताब लेकर इतिहास नहीं पढ़ाते. उन्हें इतिहास का ज्ञान

Downloaded from PDFmaza.com

होता था. इस स्कूल में ऐसे अनेक शिक्षक थे. कुल मिलाकर यहां पढ़ना आसान था.

हालांकि साहित्य पढ़ने की आदत ने मेरी पढ़ाई पर असर डाला. जहां प्रेमचंद ने दुनिया को समझने में मेरी मदद की, लेकिन सिलेबस से दूर रहने से मेरी पढ़ाई कमज़ोर होने लगी. मैं आठवीं-नौवीं कक्षा में था, जब वैसे ही स्कूल की पढ़ाई काफी नहीं होती. इस वक़्त ज़्यादातर छात्र अलग से कोचिंग या ट्यूशन में पढ़ते हैं. मैंने अपने पिताजी से कोचिंग के लिए कहा लेकिन पिताजी ने हाथ खड़े कर दिए.

लेकिन उन्होंने इसका एक उपाय निकाला. उन्होंने मुझे सुझाव दिया कि मैं सुबह-सुबह घर से निकल जाऊं और स्कूल जाने से पहले पांच किमी दूर जाकर अपने उन्हीं रिश्तेदार शिक्षक के यहां एक घंटे पढ़ाई कर लूं. शुरू-शुरू में मैं इससे हिचका, क्योंकि तब मुझे अकेले बस से जाना पड़ता और रोज़ किराए के चार रुपए खर्च हो जाते. मैंने पिताजी से कहा कि अगर वे मेरे लिए एक साइकिल खरीद दें तो मुझे आने जाने में सुविधा होगी और किराए के पैसे भी बच जाएंगे. वे मान गए. मैं नौवीं क्लास में था, जब मुझे पहली साइकिल मिली.

हम जब बराबरी की बात करते हैं तो संसाधनों और अवसरों में बराबरी के बिना नतीजों में बराबरी नहीं हो सकती है. जब घर में आपको ठीक से खाना नहीं मिल रहा हो और मेहनत ज़्यादा करनी पड़ रही हो तो उसका असर आपके प्रदर्शन पर पड़ेगा.

तीसरे महीने मैं बीमार हो गया, क्योंकि रात का बासी खाना सवेरे खाकर और दोपहर को भूखे रह कर रोज़ पांच किमी से ज़्यादा साइकिल चला कर जाना और उतनी ही दूरी तय करके लौटना होता था. इसके बाद मुझे ट्यूशन छोड़नी पड़ी और इसके साथ ही गणित से मेरी दोस्ती का अंत हो गया. यहां तक आते-आते हमें अलजेब्रा पढ़ना पड़ता था, जो बिना ट्यूशन के समझ में नहीं आता था. यहीं से विज्ञान और गणित की पढ़ाई मुझे एवरेस्ट की चढ़ाई जैसी लगने लगी, जिस पर बिना उपकरणों के नहीं चढ़ा जा सकता.

लेकिन समाज विज्ञान पर पकड़ अब भी गहरी थी. इसे समझने में सिलेबस की बाहर की किताबें पढ़ने की आदत और जीवन के अनुभवों ने काफी मदद की और इन विषयों में अच्छे अंकों की वजह से ही मैं स्कूल में अच्छा कर रहा था.

Downloaded from PDFmaza.com

इसके बाद के साल मेरे परिवार के लिए बहुत मुश्किलों भरे थे. जब मैं नौंवीं में था, तब मेरी दीदी की शादी हुई थी. चूंकि पिताजी के पास कोई जमापूंजी नहीं थी, इसलिए उन्हें पुश्तैनी ज़मीन का वह छोटा-सा टुकड़ा गिरवी रखना पड़ा, जिस पर हमारा घर था. हमारे देश में लड़कियों की पढ़ाई के लिए ज़मीन नहीं बेची जाती, न उसे गिरवी रखा जाता है, लेकिन उनकी शादी के लिए ऐसा किया जाता है. दीदी दसवीं की परीक्षा दे रही थीं, जब उनका रिश्ता तय हुआ. तब जीजा जी बारहवीं की परीक्षा दे रहे थे और इस तरह से कम उम्र में उनकी शादी हुई जो गैरक़ानूनी थी. लेकिन गांव में यही होता था.

उस दौरान परिवार की आर्थिक हालत बहुत ख़राब हो गई थी. पहले बोरे में आने वाला आटा अब पॉलीथीन की छोटी सी थैली में आने लगा था- ऊंची जाति के एक खेतिहर घर के लिए आटा खरीदना और वो भी छोटी थैलियों में, एक शर्म की बात थी. पैसे की लगातार तंगी से मैं चिंतित रहने लगा. मुझे लगता, मेरे सपने भी छोटे होते जा रहे हैं. पैसे की तंगी से मुझे डर लगने लगा था. मुझे अपने सपने छोटे और छोटे होते महसूस हुए. सपनों को हासिल करना आसान नहीं होता. वे हकीकत की पथरीली ज़मीन पर टूट जाते हैं.

पहले मुझे क्रिकेट पसंद था, लेकिन सरकारी स्कूल लौटने के बाद मुझे इसको छोड़ देना पड़ा. क्रिकेट का बैट तक खरीदना मेरे बस की बात नहीं थी. इसमें पांच सौ रुपए लगते थे. मेरी समझ में आ गया कि यह अमीरों का खेल है और हम बस कबड्डी ही खेल सकते हैं, जिसमें कुछ नहीं लगता है. मुझे अहसास हो रहा था कि मैं जो इंजीनियर, डॉक्टर या कलेक्टर बनना चाहता था, कभी नहीं बन पाऊंगा.

उन्हीं दिनों मुझे पढ़ाई छोड़ने का खयाल आया. मेरा बड़ा भाई पहले ही पढ़ाई छोड़ चुका था और उसने गुवाहाटी, असम में एक कारखाने में गार्ड की नौकरी कर ली थी. तब मैं दसवीं में था और मैंने भी सोचा कि जब मेरे पास मौके नहीं हैं तो पढ़ने का कोई फायदा नहीं है.

लेकिन मुझे पढ़ने का शौक था और दूसरे मैं शारीरिक रूप से बहुत मज़बूत नहीं था, इसलिए मैं चाहता था कि ऐसा काम करूं जिसमें पढ़ने का शौक पूरा हो सके और शारीरिक मेहनत भी न लगे. मैं गार्ड बनने, गराज में मिस्त्री बनने, किराना दुकान चलाने जैसे काम नहीं कर सकता था जहां शारीरिक

Downloaded from PDFmaza.com

मेहनत लगती थी. इसलिए मैंने सोचा कि किसी किताब की दुकान पर नौकरी कर लूं.

हमारे बाज़ार में एक दुकान थी, लेखनी पुस्तक भंडार. यहां किताबें बिकती थीं और उसके मालिक अब उसका विस्तार करके पंखा-बल्ब भी बेचने लगे थे. उन्हें एक आदमी की ज़रूरत थी. मैंने उनसे जाकर बात की कि वो दुकान का किताब वाला हिस्सा चलाने के लिए मुझे रख लें. बात तय हो गई, वे मुझे हर महीने पांच सौ रुपए की पगार देने पर राज़ी हुए. मैं नौकरी को लेकर बहुत उत्साहित था.

लेकिन मुझे यह काम नहीं करना पड़ा. उन्हीं दिनों पचास रुपए रोज़ पर मुझे पोलियो की दवा पिलाने का एक काम मिल गया, जिसमें मुझे घर-घर जाकर बच्चों को पोलियो की दवा पिलानी होती थी. यह मेरे लिए ज़्यादा आसान काम था, क्योंकि इसमें वक़्त कम लगता था और पैसे करीब उतने ही मिलते थे. इस दौरान के अनुभव बड़े मज़ेदार थे.

लोग पोलियो की दवाएं पिलाने से डरते थे क्योंकि आमतौर पर माना जाता था यह बच्चों को नपुंसक बनाने की दवा है, जिसे सरकार आबादी के नियंत्रण के लिए धोखे से सबको पिला रही है. वे अपने बच्चों को दवा पिलाने से साफ़ मना कर देते. लेकिन हमें तो हर हाल में पांच साल तक के हर बच्चे को दवा पिलानी होती थी. वे लोग बच्चों को बिना दवा पिलाए ही हमारी शीट पर दस्तखत कर देते. जब हम स्कूलों में लंच के वक़्त बच्चों को दवा पिलाने पहुंचते तो बच्चे हमें देख कर भागने लगते थे. हमारे देश में योजनाएं ऐसे ही फर्ज़ी दस्तखतों से चलती हैं.

आख़िरकार मेरे काम करने की बात पिताजी को पता चली. वे बहुत सोच में पड़ गए. मुझे रोकने के लिए उनके पास कोई वाजिब तर्क नहीं था, क्योंकि वे भी नहीं सोच पा रहे थे कि आगे चल कर मैं क्या करूंगा. लेकिन उन्होंने मुझे सलाह दी कि आनेवाले महीनों में अच्छे से तैयारी करके दसवीं की परीक्षा दे दूं और फिर उसके बाद काम पर लगूं. शायद उनका खयाल था कि इस तरह मैं यह नहीं कह सकूंगा कि पढ़ाई छोड़ कर मुझे काम पर लगना पड़ा था. शायद वे खुद भी इस अपराधबोध से मुक्त होना चाहते होंगे. लेकिन पिताजी को इसका अंदाज़ा नहीं था कि जब आपकी प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा ठीक रहती है तो बिहार बोर्ड की परीक्षा पास करना उतना मुश्किल भी नहीं होता. डर मुझे सिर्फ़ गणित का था, लेकिन उसने मुझ पर रहम किया. मैं गणित के पेपर में सौ में सैंतालीस नंबर ला सका और किसी

Downloaded from PDFmaza.com

तरह से इसमें पास कर गया. बाक़ी सभी विषयों में अच्छे नंबर थे, समाज विज्ञान में बहुत अच्छे अंक थे और सबसे ज़्यादा अंक संस्कृत में थे. असल में यह संस्कृत के शिक्षकों की दरियादिली थी, क्योंकि उन्हें हमेशा आशंका रहती कि ख़राब अंक आने की वजह से बच्चे संस्कृत पेपर लेना न छोड़ दें, इसलिए वे इसमें खूब नंबर दिया करते थे. मैट्रिक में मुझे फर्स्ट डिवीज़न आया था.

जिन दिनों रिज़ल्ट आया, उस वक़्त पिताजी हॉस्पीटल में भर्ती थे. मेरी परीक्षाओं के ठीक बाद वे बीमार पड़ गए थे. उन्हें डायबिटीज़ हो गया था. हॉस्पीटल के खर्च ने हमें तबाह कर दिया होता, लेकिन असल में वे परिवार में एक शादी के मौके पर ही बीमार पड़े थे, जब सभी नाते-रिश्तेदार आए हुए थे और उन्होंने उसका खर्च उठा लिया.

मैं उनकी देखभाल करने के लिए हॉस्पीटल में रहता था और तभी बाहर जाता जब कुछ सामान, चाय वगैरह लाना होता. एक दिन जब मैं चाय लाने दुकान पर गया तो उस दिन के अखबार में मैट्रिक का रिज़ल्ट छपा हुआ था. रिज़ल्ट देखने की हड़बड़ाहट इतनी थी कि मैंने साढ़े तीन रुपए के अखबार के पांच रुपए चुकाए और थर्ड डिवीज़न वाले कॉलम में अपना रोल नंबर देखने लगा जो वहां मुझे दिखाई नहीं दिया. धड़कते दिल के साथ मैं सेकेंड डिवीज़न की ओर मुड़ा और फिर वहां से भी इस डर के साथ फर्स्ट डिवीज़न में देखने लगा कि कहीं मैं फेल न कर गया होऊं.

रिज़ल्ट देख कर मेरा मन आसमान में था. यह पहली बार नहीं था कि मैं फर्स्ट डिवीज़न लाया था. लेकिन यह सही वक़्त पर हुआ था, जब मैं सोचने लगा था कि पढ़ने से कोई फायदा नहीं है और मन ही मन डर रहा था कि ट्यूशन नहीं पढ़ने की वजह से मैं फेल कर जाऊंगा. हॉस्पीटल के वार्ड में लौट कर मैंने पिताजी को बताया कि रिज़ल्ट आ गया है. आशंका के साथ उन्होंने मेरा रिज़ल्ट पूछा, जिसमें संदेह भी था. मैंने बताया, 'मैं फर्स्ट आया हूं पापा.'

लेकिन पापा तो बुरी ख़बर के लिए तैयार थे, वे संतुष्ट नहीं हुए. 'साइंस में कितने नंबर आए हैं?'

नतीजा मेरे लिए अच्छा रहा था, लेकिन स्कूल के लिए उतना अच्छा नहीं रहा था. पूरे स्कूल में सिर्फ़ सत्ताइस छात्र पहली श्रेणी से पास हुए थे, जबकि आम तौर पर साठ-सत्तर छात्र फर्स्ट डिवीज़न लाया करते थे. इसलिए जब मैं अपनी मार्क्स शीट लाने गया, तो चपरासी का मूड उखड़ा

Downloaded from PDFmaza.com

हुआ था. क्लर्क से शीट लेकर उसने मुझसे बख्शीश की मांग की. मैंने उससे कहा कि मेरे पास तो आने-जाने का किराया तक नहीं है, मैं बख्शीश कहां से दूंगा. उसने मुझे डांटा, 'सुबह-सुबह मूड मत ख़राब करो. पहले ही इस बार कम स्टूडेंट ने पास किया है. तो बख्शीश कम ही मिलेगी. उस पर से तुम मना कर रहे हो.'

मैंने उससे कहा कि वो मेरी मार्क्स शीट भले रख ले, लेकिन मेरे पास बख्शीश देने को कुछ नहीं है. हम ये बातें कर ही रहे थे कि मेरे एक शिक्षक उधर से गुज़रे. उन्होंने चपरासी को बताया कि वो मुझे तंग न करे, मेरे पास सचमुच पैसा नहीं रहता है. चपरासी ने बड़े भारी मन से यह कहते हुए मार्क्स शीट मेरी तरफ़ बढ़ाई, 'फर्स्ट आके ही तुम क्या कर लोगे.'

बात सही थी. और यही मेरे लिए चुनौती भी थी. फर्स्ट आकर भी मैं क्या कर सकता था.

पिताजी पर मेरे रिज़ल्ट की मिली-जुली प्रतिक्रिया हुई. लंबी बीमारी और कर्ज़ के बीच में उन्हें एक ऐसी ख़बर मिली थी, जिसकी वे शायद उम्मीद छोड़ चुके थे. इससे वे खुश हुए थे. लेकिन भीतर ही भीतर अब उन्हें इसकी फिक्र भी होने लगी कि अब उन्हें मेरे लिए कुछ करना पड़ेगा. अच्छे रिज़ल्ट के बाद अब मुझसे यह कहना मेरे प्रति अत्याचार होगा कि मैं जाकर लेखनी पुस्तक भंडार पर काम करूं. मेरी पढ़ाई को लेकर उनका कर्तव्य हमेशा ही उनके लिए एक बोझ रहा था और उनका फंदा थोड़ा और कस गया था.

लेकिन अब मेरे लिए रास्ता खुल गया था. मेरे पुराने संदेह दूर हो गए थे. मैं जानता था कि पढ़ने के रास्ते पर ही बढ़ना है, काम नहीं करना है. फिक्र बस ये थी कि मेरा अगला पड़ाव कहां होगा. ज़िलों में अभी तक सरकारी कॉलेज ही हुआ करते थे, निजी कॉलेज खुलने अभी शुरू नहीं हुए थे. सो बेगूसराय में अभी भी जीडी कॉलेज का एक नाम था. इंटर में सब वहीं नाम लिखाने की सलाह दे रहे थे.

लेकिन अगर मैं इन सलाहों को मान लेता तो फिर से मेरे विकल्प सीमित हो जाते. यहां चलने वाली मनमानी की बानगी मैं पहले ही सरकारी स्कूलों के दौरान देख चुका था. यानी पहले साल बस के भीतर सफर करो, दूसरे साल से बस की छत पर और तीसरे साल बस जला दो. क्या मुझे ऐसा रास्ता अपनाना था?

सिर्फ़ दो बातें थीं, जिन्होंने मुझे ऐसे भविष्य से बचा लिया. उनके बारे में मैं पहले बता चुका हूं. एक तो मैं शारीरिक रूप से कमज़ोर था और दूसरे मैं

Downloaded from PDFmaza.com

राजनीतिक और सांस्कृतिक गतिविधियों में हिस्सा लेता था और मुझे साहित्य पसंद था. नहीं, मैं बेगूसराय में नहीं पढ़ना चाहता था. मैंने बहुत सहमते हुए पिताजी को बताया कि मैं पटना जाना चाहता हूं. वो राजधानी ही थी जो मुझे गांव की ज़िंदगी के जटिल, दमघोंटू बंधनों से छुटकारा दिला सकती थी. पिताजी बड़े असमंजस में पड़े. पटना में रहना और पढ़ना महंगा पड़ता. मैंने उन्हें बताया कि मैंने कुछ लोगों से बात की है. मुझे हर महीने बस पांच सौ रुपयों की ज़रूरत होगी.

मैंने पहली बार अपने पिताजी के अंदर एक धुन, एक जज़्बा देखा. बीमार देह में, बैंडेज के साथ, वे सुबह उठ कर काम पर जाने लगे थे. यह बहुत बड़ी बात थी. अगर उन्होंने वह धुन नहीं दिखाई होती, तो मैं दसवीं के बाद नहीं पढ़ पाता. उन्होंने असंभव को संभव कर दिखाया और पैसे जुटाए.

इसी के साथ गांव के मेरे दिन ख़त्म हुए. एक दिन बोरिया बिस्तर, गैस का छोटा सा सिलिंडर और चूल्हा, जो घर में कभी-कभी चाय बनाने के लिए इस्तेमाल किया जाता था, और खाने का सामान लेकर मैं पटना के लिए रवाना हो गया.

Downloaded from PDFmaza.com

भाग 2पटना

वे अगस्त के उमस भरे दिन थे, जब मैं पटना पहुंचा था. दिन काफी ढल चुका था. यह मेरी ज़िंदगी का सबसे बड़ा सफर था. गड़हरा स्टेशन पर ट्रेन का इंतज़ार करते हुए मेरे मन में टिकट के 18 रुपए बचा लेने का लालच एक बार आया था. लेकिन जुर्माने के डर ने मुझसे टिकट खरीदवा दिया था. जब ट्रेन आई तो डिब्बे के अंदर मुझे जगह नहीं मिल पाई. मुझे डिब्बों के बीच की खाली जगह पर अपने लिए जगह बनानी पड़ी.

पटना पहुंच कर हैरानी और रोमांच दोनों का अहसास हो रहा था. यकीन नहीं हो रहा था कि मैं एक बड़े से शहर में था. अपनी तरफ़ उम्मीद से लपकते रिक्शेवालों को निराश करते हुए, ऊबड़-खाबड़ पटरियां पार करके पैदल मिट्ठू लॉज पहुंचा था.

खपरैल के छाजन वाले उस लॉज में पटना के ज़्यादातर लॉजों की तरह बिस्तर किराए पर मिलता है, कमरा नहीं. मैंने जो बिस्तर अपने लिए चुना, उसका किराया 250 रुपए प्रति माह था. इसके अलावा उस कमरे में एक बिस्तर और था. उस पर रहने वाले लड़के ने मुझे मेरा कोना दिखा दिया. उसके लहजे में पुराना निवासी होने की एक ठसक थी.

कुछ थकान मिटाने के बाद मैंने अपना सामान करीने से लगाने की कोशिश की - गांव में उधारी वाले दुकान से खरीदा हुआ पांच किलो आटा, एक लीटर सरसों का तेल, एक कपड़े साफ़ करने वाला साबुन, एक देह में लगाने का (नहाने वाला) साबुन, एक ब्रश, एक जिभिया, कोलगेट और मां द्वारा मन मार कर दिया हुआ गैस का चूल्हा. कुल मिला कर मैं राशन-पानी की तरफ़ से 15 दिनों के लिए निश्चिंत था. बिस्तर पर बिछाने के लिए मां ने पुराने कपड़ों का एक गेंडा (बिछावन) सिल दिया था.

मेरे कमरे के बाहर पटना न सिर्फ़ एक बहुत बड़ा शहर लग रहा था, बल्कि कुछ-कुछ डरावना भी. मैं अब तक कूड़े के ढेर पर मवेशियों और चिड़ियों को खाना खोजते देखता आया था, पहली बार मैं बच्चों और बड़ों को कूड़े के ढेर में से खाना खोज कर खाते हुए देख रहा था. यह इक्कीसवीं सदी में भारत का एक शहर था और दिल्ली आने तक पटना ही मेरे लिए सबसे बड़ा शहर बना रहने वाला था.

Downloaded from PDFmaza.com

यह पहला मौका था, जब मुझे अपने बारे में खुद कदम उठाना था. अब मुझे अपनी पढ़ाई, खाने, पहनने का इंतज़ाम करना था. घर पर जिस तरह मां या पिताजी हुआ करते थे, यहां मेरी मदद करने के लिए हर पल कोई नहीं होने वाला था. लेकिन अगर आपके पास विकल्प कम हों तो फैसले करना आसान होता है.

बिहार में अगर आपने मैट्रिक में गणित में बेहतर किया है तो आप इंजीनियरिंग से रास्ते पर हाथ आज़माएंगे और अगर आपने बायोलॉजी में अच्छा किया है तो मेडिकल के रास्ते पर. यह एक तरह से तय होता है. पहला कदम उठाने के लिए आपके सामने और कोई विकल्प नहीं होता. मैट्रिक में बायोलॉजी के मुकाबले मेरा गणित बेहतर था. इंजीनियरिंग का सपना देखने पर मेरा वाजिब हक बनता था.

एक बार विषय चुन लेने के बाद आपको बस एक सही कोचिंग चुनना होता है. पटना की सड़कों पर चलते हुए मुझे एक मशहूर चुटकुला याद आता है. किसी भी सड़क पर खड़े होकर ढेला फेंकिए, वह या तो किसी शर्तिया इंजीनियर बनाने का दावा करने वाले कोचिंग पर गिरेगा या उसके होर्डिंग पर. अशोक राजपथ और उससे सटे इलाकों से लेकर राजेंद्र नगर (नाला) रोड, कदमकुआं, कंकड़बाग आदि मुहल्ले ऐसे संस्थानों के विशेष केंद्र हुआ करते हैं. हालांकि इनमें सुविधाओं और ढांचे के नाम पर कुछ नहीं होता, लेकिन इनकी फीस काफी हुआ करती है, ख़ास कर मेरी जैसी पृष्ठभूमि से आने वाले बच्चों की हैसियत से तो वह बाहर ही होते है.

लेकिन मुझमें आगे पढ़ने की ज़िद थी और मैंने ठान रखा था कि मैं अपने रास्ते खोज लूंगा.

इसलिए, मैंने जो चुना वो कोई कोचिंग नहीं, बल्कि वह गणित की एक ट्यूशन थी. मेरा रूम पार्टनर पहले इस टीचर से पढ़ चुका था. उनका नाम अभिमन्यु सर था. मेरे गांव का नाम सुनते ही उनकी दिलचस्पी बढ़ गई. उन्होंने मेरे घरवालों के काम-काज के बारे में पूछा. जब मैंने यह बताया कि मेरे दादाजी और पिताजी बीहट के बरौनी थर्मल पावर स्टेशन में काम करते थे, तो वो रोमांचित हो गए.

इसे अनोखा इत्तेफाक कहेंगे कि वो मेरे पिताजी को जानते थे. असल में उनके बड़े भाई थर्मल पावर स्टेशन में काम करते थे और अभिमन्यु सर वहीं रह कर पढ़ते थे. हालांकि वे बिहार से ही थे, लेकिन बीहट से न होने के कारण वे परदेसी (बाहरी) माने जाते थे. मेरे पिताजी वहां के लोकल थे. ऐसी

Downloaded from PDFmaza.com

जगहों पर बाहरी और लोकल का बड़ा फर्क होता है. लोकल को कोई परेशान नहीं कर सकता, लेकिन परदेसी की कोई हैसियत नहीं होती. इसलिए जब उनको कोई परेशानी होती, मेरे पिताजी हमेशा उनकी मदद करते. इन सबकी वजह से उनका परिवार मेरे पिताजी के लिए बड़ा आभारी रहा करता था. अचानक उनके पास मेरे पहुंचने से उन्हें एक मौका मिला था कि वे अपना पुराना ऋण उतार सकें. मेरी फीस माफ कर दी गई. मैं खुश था.

लेकिन रहने के मामले में किस्मत मेरा साथ नहीं दे रही थी. मेरे रूममेट का रवैया मेरे साथ बहुत उत्साहजनक नहीं था. पहले से वहां होने की वजह से वो कमरे को अपना साम्राज्य मानता था. हर बात मुझे उससे पूछ कर और उसकी सहमति से करनी होती थी. तिस पर भी वो मुझसे बहुत खुल कर पेश नहीं आता. मुझे नहीं मालूम कि वो मुझे अपने साथ रखने के लिए क्यों तैयार हुआ था. वो मेरा दूर का रिश्तेदार था और उस पर मेरी बुआ ने शायद कभी कोई उपकार किया था, जिसके कारण वो मुझे अपने साथ रख रहा था. लेकिन मुझे साथ रख कर वो ऐसा जताता मानो वो मुझ पर ही अहसान कर रहा हो.

मुझे कहा गया कि अगर मुझे रात में देर तक पढ़ना हो, तो मुझे टेबल लैंप खरीद कर लाना होगा क्योंकि उसे रोशनी में नींद नहीं आती. अगर उसको देर कर पढ़ना होगा, तो मुझे रोशनी में सोने की आदत डालनी होगी. लेकिन मेरा गैस का छोटा-सा चूल्हा देख कर वो खुश हो गया था, क्योंकि वह किरासन तेल के स्टोव पर खाना बनाता था. शायद वो पहली चीज़ थी, जिसकी वजह से वो मेरे करीब आया. हमने मिल कर खाना बनाने का फैसला किया. सुबह का खाना मुझे बनाना था. क्योंकि उसे सुबह ट्यूशन जल्दी जाना था. रात को सब्ज़ी मुझे बनानी थी, रोटी बनाना उसने स्वीकार किया. यह अहसान भी उसने शायद इसलिए किया, क्योंकि मुझे रोटी बनानी नहीं आती थी. इस तरह हमारी पार्टनरशिप जैसे-तैसे चल पड़ी. पहली बार मैं घर से बाहर रह रहा था. पूरी तरह अनजान एक आदमी के साथ, उसके क़ायदे-कानूनों के साथ. मेरे रूम पार्टनर का खिंचा-खिंचा रहना और उसका गैरज़रूरी शासन मुझे दूसरों के करीब ले गया. उसी लॉज में एक लड़का मेरा दोस्त बन गया था. अपने पार्टनर से परेशान होने पर मैं उसके पास जाकर बैठ जाता. मेरा पार्टनर इससे भी चिंतित रहता. लेकिन उसके साथ रिश्ता टूटना ही था, क्योंकि उसकी शुरुआत ही कड़वाहट से हुई थी.

Downloaded from PDFmaza.com

यह मेरी एक नई ज़िंदगी थी. सुबह उठते और नाश्ता करते. कभी बिस्कुट, कभी रात का भिगोया हुआ चना. दोपहर के खाने में चावल, दाल और आलू का चोखा होता जिसे एक ही कुकर में सेपरेटर की मदद से एक ही साथ बना लिया जाता. रात के खाने में भी आलू ही होता, बस चावल-दाल की जगह रोटी बनाई जाती.

लॉज की ज़िंदगी हलचल से भरी होती. छोटी-सी जगह में इतने सारे लोगों के रहने और हवा आने जाने का रास्ता नहीं होने की वजह से गर्मी इतनी रहती कि हम पसीने में हरदम भीगे रहते. लॉज में 50 लड़के रहते और बाथरूम और टॉयलेट एक ही था, जिससे वहां लंबी लाइन लग जाती. पटना की गर्मी में उमस भी काफी होती है, ख़ास कर बारिश का मौसम शुरू होने के बाद. रात में भी, खाना बनाने के बाद हमें नहाना पड़ता और तब जाकर खा पाते. मैंने लंबी लाइनों से बचने के लिए अपनी रूटीन ही बदल ली थी. जब सारे लोग ट्यूशन चले जाते, तभी मैं जगता. लेकिन लॉज में पानी आने का भी एक वक़्त होता था और मेरे जगने पर नहाने के लिए पानी नहीं बचता था. ऐसे में नहाने के लिए मुझे दोपहर बाद का इंतज़ार करना पड़ता.

धीरे-धीरे मैं इस ज़िंदगी में सेटल होने लगा था. घर से मिलने वाले पैसों में से 250 रुपए तो सीधे लॉज के किराए में चले जाते. बाक़ी बचे रुपए ज़रूरत की चीज़ें खरीदने में खर्च होते और मैं चीज़ें वहीं से खरीदता जहां थोड़ी सस्ते में मिल जातीं. आम तौर पर सब्ज़ी वाले बहुत कम तोलते हैं, ख़ास कर उन इलाकों में जहां छात्र रहा करते हैं. एक सब्ज़ी वाले से मेरी दोस्ती हो गई और धीरे-धीरे वो मुझे ढाई किलो के पैसे में तीन किलो आलू देने लगा. वह मुझे कोई ज़्यादा आलू नहीं देता, बस वो मुझसे जितने पैसे लेता, उतने का सही वज़न से आलू देता था.

इस तरह मैं थोड़े पैसे और बचा लिया करता. अशोक राजपथ पर थोड़ा मोल-भाव करने पर फुटपाथ से 25 रुपए में हाफ पैंट ले आया. लॉज में मैं यही पहनता था- गंजी (बनियान) और हाफ पैंट. बाहर जाने के लिए मेरे पास सिर्फ़ दो जोड़ी कपड़े थे- एक जोड़ी पहनो और एक धोकर रखो.

बहुत दिनों तक मैं सिर्फ़ पैदल चलता. रिक्शा या ऑटो का किराया मेरे बूते से बाहर था. फिर एक दिन मुझे एक पुरानी साइकिल मिल गई. हुआ यह कि मैं ऐसे ही मिलने के लिए अपने एक रिश्ते के भैया के यहां गया जो कंकड़बाग में रहते थे. मैंने देखा कि उनके यहां एक पुरानी साइकिल रखी

Downloaded from PDFmaza.com

हुई थी, जिसको देख कर लगता था कि उसका इस्तेमाल नहीं होता था. उनके यहां एक पुराना टाइपराइटर भी रखा हुआ था. चलते वक़्त मैंने उनसे ये दोनों चीज़ें मांगीं. उन्होंने टाइपराइटर तो नहीं दी लेकिन साइकिल दे दी.

गणित के ट्यूशन के साथ-साथ इंटरमीडिएट करने के लिए मैंने पटना में ही मोकामा के राम रतन सिंह महाविद्यालय में दाखिला ले लिया था. लेकिन मैं वहां क्लास करने कभी नहीं गया. कोचिंग क्लासों में इंजीनियरिंग की तैयारी करने वाले अनगिनत बच्चों की तरह मैं भी वहां सिर्फ़ दाखिला लेने, परीक्षाएं देने और रिज़ल्ट लेने के समय ही गया.

कॉलेज में दाखिले से सिर्फ़ यह हुआ था कि मैं अपनी इंटरमीडिएट परीक्षा दे सकूंगा. इंजीनियरिंग की तैयारी के लिए असल में कोचिंग क्लासेज ज़रूरी थीं. चूंकि इंजीनियरिंग की कोचिंग करने की मेरी हैसियत नहीं थी, मैं ज़्यादातर वक़्त कमरे पर रह कर पढ़ाई करता. किताबें भी मेरे पास कम ही थीं और ज़्यादातर मैं अपने रूम मेट से इंजीनियरिंग की किताबें लेकर पढ़ता.

लेकिन गणित का ट्यूशन भी कुछ अच्छा नहीं लग रहा था. हर सुबह जब मैं भारी मन से ट्यूशन के लिए तैयार होता मुझे लगता कि फिर से मुझे पैराबोला और एल्लिप्स में सिर खपाना है. उस ए प्लस बी के होल स्क्वेयर को समझने में ज़िंदगी झोंकनी है, जिससे ज़िंदगी का कोई स्क्वेयर नहीं बनता. मुझे सीखने की चाबी तो हासिल नहीं हुई थी, ऐसा लगता था कि हर रोज़ दरवाज़े पर एक नया ताला लगता जा रहा है.

मेरा हौसला डोल रहा था. मैं फिर से लगभग वैसी ही तकलीफ से गुज़र रहा था, जैसी मैंने सनराइज़ पब्लिक स्कूल के दौरान महसूस की थी. संसाधन बहुत कम थे और बाधाएं बहुत ज़्यादा. पहली बार तो मैंने खूब मेहनत करके बाधाएं पार कर ली थीं, लेकिन इस बार उनसे पार पाना मेरी क्षमता से बाहर था. मैंने सोचा था कि कड़ी मेहनत से इस बार भी मैं इंजीनियरिंग की तैयारी करने में कामयाब रहूंगा. लेकिन ज़िंदगी के अनुभव ने सबक दिया कि ज़िद से ज़िंदगी नहीं चलती है.

एक साल के अंदर ही मुझे पता लग गया कि इंजीनियरिंग की तैयारी करना मेरे बस का रोग नहीं है. एक तो मेरे लिए इंटर की नियमित क्लासें करना संभव नहीं था, और दूसरे मेरे पास ढंग के कोचिंग की फीस चुकाने के पैसे नहीं थे. यहां तक कि मैं किताबें भी नहीं खरीद पाता था. ऐसे में

Downloaded from PDFmaza.com

इंजीनियरिंग करना कैसे संभव था? शायद मुझे यह विषय ही नहीं लेना चाहिए था.

एक दिन मैंने अपने पिताजी को यह बात बता दी. फिर जाकर मास्टर साहब से कहा कि आपने मुझ पर बहुत मेहनत की कि मुझे गणित समझ में आ जाए, लेकिन यह मेरे पल्ले नहीं पड़ा.

उस दिन इंजीनियरिंग के सपने को मैंने हमेशा के लिए छोड़ दिया. लेकिन मेरा भविष्य क्या होगा?

गरीब लोगों के सपने और उनकी ज़िंदगी की हकीकत नदी के दो किनारों की तरह होते हैं, जो कभी आपस में मिलते नहीं हैं. जब मैं पटना आया था, तब मुझे नहीं मालूम था कि मेरी स्थिति भी ऐसी ही होने वाली है. मैं नदी के दूसरे किनारे पर तैर कर जाने की कोशिश कर रहा था और बहाव था कि उसने मुझे अपने उसी किनारे पर उठा कर फेंक दिया था.

आगे कोई राह नहीं समझ में आ रही थी. मैंने अपनी हालत का जायज़ा लिया. मैंने देखा कि अब पढ़ने की हालत मेरी नहीं थी. वैसे भी पढ़ाई का उद्देश्य तब पैसा कमाना ही लगता था. मैं सोचता कि भारत में लोग इंजीनियरिंग करके बेकार घूमते हैं, एमबीए करके डिटर्जेंट बेचते हैं. और फिर पैसे कमाने के लिए भी तो पैसों की ज़रूरत पड़ती है, तो इससे अच्छा है कि पैसा कमाने का कोई विदेशी फॉर्मूला अपनाया जाए.

अब मुझे पिताजी के दोस्त मोहम्मद जलालुद्दीन की याद आई, जिन्हें हम जलाल सर कहते थे. वो पटना से करीब सौ किमी दूर नवादा शहर में रहते थे. वो मेरे परिवार के कुछेक करीबी लोगों में से थे, जो अपनी ज़िंदगी में कामयाब और संपन्न थे. उनके परिवार के लोग खाड़ी देशों में रहते थे. जलाल सर मेरे पापा को बताया करते थे कि दुबई जाना हो तो कोई मामूली सा तकनीकी हुनर सीख लेने से आसानी से वीज़ा लग जाता है. मैंने सोचा कि अगर मैं एसी और फ्रिज मरम्मत करना सीख जाऊं तो दुबई जाना मुश्किल नहीं होगा. लॉज का किराया उधार रख कर और कुछ खर्च बचा कर मैंने 500 रुपए जमा किए और एसी-फ्रिज मरम्मत करने की ट्रेनिंग लेने लगा.

मैंने जलाल सर के घर जाकर उनसे मिलना भी तय किया, ताकि उनसे दुबई जाने के सिलसिले में सलाह ली जा सके.

Downloaded from PDFmaza.com

पहली बार जलाल सर का घर देख कर मैं हैरान था. जो जलाल सर मेरे उस छोटे और साधारण से घर में दाखिल होने से पहले अपनी चप्पल बाहर खोल देते थे, वे ऐसे भव्य घर में रहते थे. मेरी तो जैसे सांस ही रुक गई.

मैं जिस दिन जलाल सर के घर गया था, उस दिन इत्तेफाक से भारत-पाकिस्तान के बीच एक क्रिकेट मैच था. मैं घर के बाहरी हिस्से में बैठा था और टीवी घर के भीतरी हिस्से में था. दूसरों की तरह मेरी रुचि भी क्रिकेट में थी और मैं बार-बार स्कोर पूछ रहा था. जलाल सर ने हमारी दिलचस्पी देख कर पूछा कि क्या हम क्रिकेट देखना चाहेंगे. हम भीतर आए तो टीवी के पास बैठी घर की औरतें उठ कर चली गईं, लेकिन बच्चे बैठे रहे.

पाकिस्तान बैटिंग कर चुका था, और उसने बहुत अच्छा स्कोर किया था. एक राउंड पटाखे उस बस्ती में चल चुके थे. भारत की बैटिंग शुरू हुई. खेल देखने वालों में चार साल का एक प्यारा-सा बच्चा भी था. सचिन बैटिंग कर रहा था और जब वो रन बनाता तो वो लड़का मायूस-सा हो जाता था.

ब्रेक के दौरान जब हम बाहर निकले, तो मैंने उस लड़के से पूछा, 'तुम्हारा सबसे फेवरेट प्लेयर कौन है?'

वो छूटते ही बोला, 'शाहिद अफरीदी.'

'क्यों?'

'वो बहुत अच्छा खेलता है.'

'अच्छा तो सचिन भी खेलता है.'

'शाहिद के बाद हम सचिन को ही पसंद करते हैं.'

'आज जो मैच हो रहा है, तुम उसमें किसको जिताना चाहते हो?'

'शाहिद अफरीदी को.'

'क्यों?'

इस पर लड़के ने गंभीरता से कहा, 'सचिन जीत जाएगा तो आपको अपने क्यों का जवाब मिल जाएगा.'

मैं उसकी गंभीरता पर हैरान रह गया. मैं उसकी बातों का मतलब भी नहीं समझ पाया था. लेकिन मुझे इन सवालों का जवाब मिला जब उस मैच का नतीजा आया. भारतीय टीम जीत गई थी और उसके समर्थक लोग पटाखे जला जला कर जलाल सर के घर में फेंक रहे थे.

Downloaded from PDFmaza.com

मैं यह देख रहा था कि वो लड़का आकर मेरी बगल में खड़ा हो गया था. उसने पूछा, 'पता चल गया कि मैं शाहिद अफरीदी को क्यों पसंद करता हूं?'

उस रात जब मैंने जलाल सर से इस घटना का ज़िक्र किया तो वे बोले, 'ये शाहिद को पसंद करना नहीं चाहता है, लेकिन इसकी मजबूरी है कि इसे उसको पसंद करना ही पड़ेगा.' तब मुझे महसूस हुआ कि समाज के एक हिस्से में क्रिकेट का सांप्रदायीकरण कितना गहरा है.

बरसों बाद एक सेमिनार के सिलसिले में कश्मीर के दौरे पर, मुझे एक और अनुभव हुआ. मैं श्रीनगर से सोनमर्ग जा रहा था और रास्ते में कई जगहों पर मैंने मैदानों में क्रिकेट के मैच होते देखे. दो-तीन जगहों पर मैंने इस पर गौर किया कि एक टीम की यूनिफॉर्म पाकिस्तान की थी. दूसरी टीम की जर्सी पर इंडिया नहीं लिखा हुआ है, लेकिन उसका रंग नीला था.

मैं उलझन में था. सोनमर्ग पहुंचे तो एक मैच वहां भी चल रहा था. वहां खेलनेवाले एक लड़के से मैंने पाकिस्तान की जर्सी की पहेली जाननी चाही.

जवाब में लड़के ने कहा, 'शक्ल से तो आप पढ़े-लिखे मालूम पड़ते हैं.'

'हां.'

'आपको नहीं मालूम, दुश्मन का दुश्मन दोस्त होता है?'

'फिर दूसरी टीम ने नीली यूनिफॉर्म क्यों पहनी हुई है?'

उसने बताया, 'यहां एक नियम है. मेज़बान टीम हमेशा पाकिस्तान की जर्सी पहनती है. उसके ख़िलाफ़ खेलने वाली टीम या मेहमान टीम पर बंदिश होती है कि वो नीली जर्सी पहने.'

यह नियम हर बार दोहराया जाना था. इस बार की मेहमान टीम जब कभी मेज़बान बनेगी तो उसे पाकिस्तानी यूनिफॉर्म पहनना होगा और पुरानी मेज़बान टीम को मेहमान बनने पर नीली यूनिफॉर्म.

यह क्रिकेट की राजनीति थी और राजनीति का क्रिकेट था.

जलाल सर के घर पर उस रात ने कई मामलों में मेरी आंखें खोल दीं.

उन्होंने मुझे बताया कि एक बार खाड़ी के किसी देश में काम मिलते ही मेरे घर की गरीबी दूर हो जाएगी. उन्होंने बताया कि वहां के वेतन से मनमाफिक खर्च करने के बाद भी मैं घर पर सालाना कम से कम 50-60 हज़ार रुपए भेजने में तो कामयाब हो ही जाऊंगा.

Downloaded from PDFmaza.com

मैं जिस तरह बेचारगी और घिरा हुआ महसूस करने लगा था, उसमें उनकी बातों ने मुझे ताक़त दी. मुझे महसूस हुआ कि अपनी ज़िंदगी में मुझे जो भी करना है, वो खुद करना है. मेरे बारे में फैसले अब कोई दूसरा नहीं लेगा. जो भी जोखिम हैं, मुझे खुद ही उठाने हैं. नवादा से मैं एक नए उत्साह के साथ लौटा. अब मैं नए उत्साह के साथ काम सीखने जाने लगा. वहां ज़्यादातर ऐसे लड़के आते थे, जो मेरी जाति और धर्म के नहीं थे और उनके परिवार से कोई न कोई पहले से ही खाड़ी देशों में था. फीस की मुश्किल मेरे लिए यहां भी थी, लेकिन मैंने किसी तरह उधार लेकर, पैसे बचा कर फीस अदा की.

पटना में रहते हुए मुझे दो साल होने वाले थे. धीरे-धीरे मुझे शहर की हवा लगने लगी थी. मेरे पंख निकलने लगे थे.

सबसे पहला कदम था रेलवे में बिना टिकट लिए सफर करना. मैंने सोचा कि बेटिकट पकड़े जाने पर जुर्माना ही होना है, तो फिर साधारण कोच में क्यों सफर किया जाए? इस तरह अब मैं एसी डिब्बों में बैठने लगा. अगर कभी टीटीई आकर टिकट मांगता तो इस तरह बेधड़क होकर जवाब देता कि वह ज़्यादा उलझना उचित नहीं समझे और चला जाए.

अब मैं पटना में थोड़ा बेफिक्र होने लगा था. चौक-चौराहों पर अड्डेबाज़ी, दोस्तों के साथ बैठना और राजनीति पर बातें करना शुरू हो चुका था – यह पटना का जुनून है. राजनीति में बिहार का दिल बसता है. चाय की दुकान हो, पान की दुकान हो, कोई चौक-चौराहा हो या फिर ट्रेन हो, पांच-सात मिनट के बाद लोग सीधे राजनीति पर आ जाते हैं. यहां तक कि पटना में अगर आप रिक्शा से जा रहे हों और सफर थोड़ा भी लंबा हो तो दस मिनट के भीतर रिक्शावाला रिक्शे को प्राइम टाइम का न्यूज़ रूम बना देगा.

मेरे दोस्तों और जान-पहचान वालों का दायरा बढ़ रहा था. मिट्ठू लॉज में जो लड़का मेरा सबसे करीबी दोस्त था, उसका नाम था मणिभूषण. वह पटना विश्वविद्यालय से उर्दू साहित्य में बीए कर रहा था. उन दिनों वह मेरे लिए बड़ा दिलचस्प इंसान था, जो हिंदू होकर उर्दू पढ़ रहा था. साथ ही वह हिंदी, अंग्रेज़ी आदि भाषाओं का साहित्य भी पढ़ता था. उसी के साथ मैंने फिर से साहित्य पढ़ना शुरू कर दिया था, जो इस बड़े शहर में आकर मुझसे छूट गया था. उसका एक राजनीतिक जुड़ाव भी था. गुजरात में 2002 में हुए मुस्लिम विरोधी दंगों पर एक फैक्ट फाइंडिंग टीम गुज़रात गई थी. वह भी उसके साथ गया था. लौटने पर उसने भाजपा के अत्याचारों की ढेर सारी

Downloaded from PDFmaza.com

कहानियां बताईं, जिससे इस दक्षिणपंथी पार्टी को मैं और भी नापसंद करने लगा.

मेरे पास अखबार खरीदने को पैसे नहीं होते थे. मणिभूषण एक हिंदी अखबार खरीदता था. लेकिन मुझे बताया जाता कि कामयाब होने के लिए अंग्रेज़ी अखबार पढ़ना ज़रूरी था. यह बात मेरी समझ में नहीं आती थी कि छठी कक्षा में 'दिस इज़ अ कैट' से शुरू करने वाले छात्रों से यह उम्मीद कैसे की जाती थी कि दसवीं पास करते ही वे अंग्रेज़ी में माहिर हो जाएंगे. चाहे जो हो, अंग्रेज़ी के बिना कुछ भी मुमकिन नहीं था.

लेकिन मैं अंग्रेज़ी अखबार खरीद नहीं सकता था. मणिभूषण ने मुझे एक मकान दिखा कर बताया कि वहां अंग्रेज़ी अखबार आता है. मैं वहां जाकर पढ़ सकता हूं. यह मकान मिट्ठू लॉज के करीब ही था. बड़ी-बड़ी इमारतों के बीच वह छोटा-सा मकान बहुत अलग-सा दिखता था. मझे लगा मणिभूषण मुझसे मज़ाक कर रहा है. मैंने उससे कहा, 'अखबार तो बहुत सारे घरों में आता है. तो क्या मैं लोगों के घरों में जाकर अखबार पढ़ने लगूं?'

उसने बताया कि यह किसी का घर नहीं, एक ऑफिस है. यह कम्युनिस्ट पार्टी का एक ऑफिस था. कोई भी वहां जाकर किताबें और अखबार पढ़ सकता था.

मुझे याद आया कि एक बार सड़क पर चलते हुए मुझे बड़े ज़ोर से प्यास लगी थी. मैंने सामने दिख रहे एक बैंक की शाखा में घुस कर पानी पीने की सोची. गार्ड ने मुझे भीतर तो घुसने दिया लेकिन जब मैं पानी की ओर बढ़ा तो उसने मुझे रोक दिया. वह पानी सिर्फ़ ग्राहकों के लिए था.

यह भूमंडलीकरण का मानवीय चेहरा था.

मैं वहां जाने लगा. वहां हर शुक्रवार स्टडी सर्किल की क्लास होती थी. मणि भी उनमें शामिल होता था. मैंने भी उनमें शामिल होने का फैसला किया.

क्लास में पहले दिन जब मैं शामिल हुआ, तो मुझे उसमें बैठे चेहरे उतने अनजाने नहीं लगे. उसमें बेगूसराय के जाने-पहचाने इप्टा के लोग थे, कुछ वकील थे, कुछ छात्र थे और एक बुज़ुर्ग थे जिनको मैं अक्सर अपने गांव में भाषण देते हुए देख चुका था. भाजपा के संदर्भ में मुख में राम बगल में छुरी कहावत का इस्तेमाल करते उनका भाषण मुझे याद था. उनका नाम शिव शंकर शर्मा था.

Downloaded from PDFmaza.com

शुरू-शुरू में मैं ज़्यादातर चुपचाप बैठता था. लेनिन की साम्राज्यवाद: पूंजीवाद की चरम अवस्था पर चर्चा चल रही थी. मुझे हर बात समझ में नहीं आती थी और मुझे संकोच भी महसूस होता था, इसलिए मैं बहस को सुना करता था.

वहीं मेरी मुलाकात एक और लड़के से हुई, जो मेरी परेशानी को समझने लगा था.

वो मुझे किताबों की एक छोटी-सी दुकान पर ले गया और मुझे सचित्र सोवियत कहानियों की कुछ आसान किताबें दिलवाईं. बेगूसराय में मुझे साहित्य और सामाजिक मुद्दों वाली किताबें पढ़ना पसंद था और अब मैं फिर से इसी आदत पर लौटते हुए उपन्यास, इतिहास, राजनीति की किताबें पढ़ने लगा था. धीरे-धीरे मेरा फलक बड़ा होता जा रहा था.

मेरे मन में हमेशा कशमकश चलती रहती और यह इन दिनों तेज़ हो गई थी. मैं परिवार की हालत के लिए चिंतित रहता था. पिताजी की आर्थिक हालत लगातार ख़राब होती जा रही थी. मैं चौतरफा घिरा हुआ महसूस कर रहा था. मुझे लगता कि जल्दी ही मुझे नौकरी खोजनी होगी. लेकिन मेरे मन का दूसरा पहलू एक से बढ़ कर एक बड़े सवाल खड़े कर रहा था, जिनके जवाब मुझे तलाशने थे. इनमें से कुछ सवाल मेरे भविष्य को लेकर और अपनी आकांक्षाओं को लेकर थे, और कुछ सवाल उन सवालों के सिलसिले का ही हिस्सा थे, जो मैंने अपने गांव में ही पूछने शुरू किए थे.

पहचान का सवाल उस वक़्त मेरे लिए एक बड़ा सवाल था. पटना आने के बाद से हमेशा ही मुझे लगता कि मैं बाहरी हूं, दुनिया से थोड़ा अलग, एक ऐसा आदमी जो गैर ज़रूरी और अनचाहा हो. असल में शहर में रहना बाहरी होना ही था. अपने रूममेट के लिए मैं बाहरी था, संसाधनों के बिना मैं ठीक से पढ़ नहीं पाया था, अपने शुरुआती दिनों में मेरे दोस्त नहीं थे. हर चीज़ बेरहम लगती और मदद की कहीं से कोई आस नहीं थी.

मैंने और भी सोचा तो पाया कि मैं हमेशा ही बाहरी रहा था. मेरे पहले स्कूल के अलावा मेरे बाक़ी सारे स्कूल और अब कॉलेज ऐसी जगहों में थे, जहां के लिए मैं बाहरी था. मैं उलझन में रहता था कि मेरे सारे स्कूल और अब कॉलेज एक ही राज्य में हैं, फिर भी मैं अपने मुहल्ले के अलावा बाक़ी सब जगहों के लिए बाहरी था. इस बीच, राष्ट्रीय स्तर पर भी, बिहारी पहचान राजनीतिक रूप से एक संवेदनशील मुद्दा बन गई थी. महाराष्ट्र में क्षेत्रीयतावादी शिव सेना बिहार और उत्तर प्रदेश के लोगों पर हमले करके

Downloaded from PDFmaza.com

उन्हें वहां से भगा रही थी, उसका कहना था कि वे महाराष्ट्र के गरीब, साधारण लोगों की नौकरियां खा रहे थे. मुझे लगता था कि जो लोग मुझे यहां पर बाहरी कह कर मेरे साथ भेदभाव करेंगे, उन्हीं में से कुछ महाराष्ट्र जाने पर बाहरी कह कर पीटे जाएंगे. शायद हर कोई किसी न किसीसमय बाहरी था. लेकिन इसका सबसे ज़्यादा नुकसान गरीबों को उठाना होता है.

मैंने देखा था कि गरीबी ने किस तरह मेरे सामने बहुत कम विकल्प छोड़े थे. मैं सोचने लगा था कि दूसरों के लिए इसके अंजाम कैसे होते होंगे. धर्म गरीबों की परंपरागत शरणस्थली थी. लेकिन मुझे लगने लगा था कि मुझे धर्म से कोई लेना देना नहीं है. हाल ही में मैंने विवेकानंद की एक किताब पढ़ी थी, जिसमें उन्होंने कहा था कि 'गरीब के सामने धर्म की बात करना सबसे बड़ा अधर्म है.' यह बात मेरे दिमाग पर अंकित हो गई थी.

इंटरमीडिएट के नतीजे आए. मुझे सेकेंड डिवीज़न मिला था. गांव में होता तो इस रिज़ल्ट ने मुझे परेशान कर दिया होता. लेकिन पटना में इसने मुझमें उम्मीद जगाई थी. मेरा जो परीक्षा केंद्र पड़ा, वहां नकल की गंगा बह रही थी. बने-बनाए जवाब वाले 'एटम बम' आया करते थे और बच्चे उनके पन्नों से जवाब कॉपियों पर उतार देते.

शायद मैं अकेला था जो सवालों के जवाब अपने मन से लिख रहा था. मेरे साथ के दोस्त मेरे सीधेपन पर मेरा मज़ाक उड़ाते. लेकिन हैरानी की बात यह थी कि जब नतीजे आए तो उस पूरे कॉलेज के छात्रों को सेकेंड डिवीज़न मिला था. एक भी लड़के या लड़की को फर्स्ट डिवीज़न नहीं मिला. इसने वापस मुझमें यह भरोसा जगा दिया कि मैं पढ़ सकता हूं.

नतीजों ने मुझमें इस बात का अहसास भी जगाया कि क्या दुबई मेरे लिए सही रास्ता है. तय यह हुआ था कि मैं दुबई जाऊंगा, पैसे कमाऊंगा, परिवार की मदद करूंगा और फिर मेरे पास भी वैसी चीज़ें होंगी जैसी जलाल सर के परिवार में थीं. हमारे पास भी दोस्तों-रिश्तेदारों को देने के लिए तोहफे होंगे. लेकिन जब मैं अपने गांव लौटूंगा और लोग पूछेंगे कि मैं क्या करता हूं, तो क्या मैं यह बता पाऊंगा कि मैं एसी और फ्रिज ठीक करता हूं? क्या मैं इस काम से संतुष्ट होऊंगा? पटना में बिताए गए इन कुछ सालों ने मेरे फलक का विस्तार किया था और मुझमें बड़ी आकांक्षाएं भर दी थीं.

बिहार में कामयाबी का मतलब होता है लाल बत्ती वाली कार. नौजवान आईएएस बनना चाहते हैं, क्योंकि उनका सपना होता है कि उनके आगे-

Downloaded from PDFmaza.com

आगे गार्ड होगा, चलने के लिए लाल बत्ती होगी. और जहां जाएंगे चार लोग सलाम करेंगे. समाज की बनावट में जो हाइरार्की है, उसके मुताबिक एक आईएएस की हैसियत एक टीवी-फ्रिज बनाने वाले से कहीं ज़्यादा मानी जाती है.

तब मैं यह बात नहीं समझ पाया था कि एक हॉस्पीटल के चलने में एक डॉक्टर और एक स्वीपर की भूमिका समान रूप से ज़िम्मेदार होती है. इनमें से किसी एक के भी नहीं रहने पर हॉस्पीटल नहीं चल पाएगा. मैंने पढ़ाई जारी रखने का फैसला किया और एक कॉलेज में बीए में दाखिला ले लिया. मैंने यह भी तय किया कि अब यूपीएससी की तैयारी करूंगा और अपना खर्च ट्यूशन पढ़ा कर निकालूंगा. इससे न सिर्फ़ मुझे बड़ी हैसियत और आमदनी वाली नौकरी मिल जाएगी, बल्कि यह मेरी प्रतिभा के ज़्यादा अनुकूल भी होगा.

लालू-राबड़ी शासन के लंबे दौर का अंत करीब आ रहा था. पटना और राज्य की राजनीति बदल रही थी. वैश्वीकरण लागू होने के बाद बड़ी होने वाली पहली पीढ़ी दिखाए गए बड़े-बड़े सपनों के बीच अब अपने पैरों पर खड़ी होने के लिए ज़मीन तलाश रही थी और पाती थी कि वहां कोई ज़मीन ही नहीं है. न विकल्प थे और न सुविधाएं. रोज़गार का पता न था, सामान्य उच्च शिक्षा में कुछ ख़ास कर पाने की संभावनाएं नहीं थीं.

सरकारी नौकरियां तेज़ी से ख़त्म हो रही थीं. गांवों की भी दशा बुरी थी और किसान और मज़दूर दिन पर दिन उम्मीद खोते जा रहे थे. निराशा सब तरफ़ थी और उम्मीद कहीं दिख नहीं रही थी. ऐसे में नौजवान बची-खुची सरकारी नौकरियों की तरफ़ बेतहाशा दौड़ लगा रहे थे. यूपीएससी का सपना देखते हुए मैं भी इसी दौड़ में शामिल हो गया था.

मैंने पक्का कर लिया था कि इस बार एक ऐसे कॉलेज में दाखिला लेना है, जहां क्लास होती हो. इंटर में मैंने क्लासें नहीं की थीं, जिनका बुरा असर मेरी पढ़ाई पर भी पड़ा था. इस बार मैंने पटना के कॉमर्स कॉलेज को चुना. मेरे विषय थे- भूगोल (ऑनर्स), इतिहास, समाजशास्त्र, हिंदी, और अंग्रेज़ी. विषय चुनने में रुचि नहीं, बल्कि उस साल यूपीएससी के नतीजों की भूमिका ज़्यादा थी. उस साल 22 वर्ष की उम्र में एक लड़के ने यूपीएससी पास किया था, जो उस साल का सबसे कम उम्र का टॉपर भी था. उसके विषय थे भूगोल और हिंदी साहित्य. इसीलिए मैंने ये विषय चुने. इसके अलावा मुझे और दो विषय लेने थे. मैंने समाजशास्त्र और इतिहास विषय

Downloaded from PDFmaza.com

लिए. इतिहास यूपीएससी पास करने के लिए ज़रूरी था. उन दिनों लोग प्रतियोगिता दर्पण में विजेताओं के इंटरव्यू पढ़ कर अपने विषय चुना करते थे.

वह कॉलेज में मेरा पहला दिन था, दरवाज़े से दाखिल होते ही मैंने पाया कि वहां एक प्रदर्शन हो रहा था. जो लड़का उसका नेतृत्व कर रहा था, वो स्टडी सर्किल में भी आता था. उस लड़के ने भी मुझे पहचान लिया था. वह भी मुझे वहां देख कर हैरान हुआ था. उसका नाम था- विश्वजीत.

उसने एक झंडा ले रखा था, जिस पर एआईएसएफ (ऑल इंडिया स्टूडेंट्स फेडरेशन) लिखा हुआ था. यह छात्रों का एक राष्ट्रीय संगठन था जो सीपीआई के करीब है. मैं इससे वाकिफ था. स्टडी सर्किल के दौरान मैं बिहार में शिक्षा के समक्ष चुनौतियों पर इसके एक कार्यक्रम में शामिल हो चुका था. मुझे कहना होगा कि मैं भाषण सुनने से ज़्यादा वहां खाना मिलने की बात को लेकर उत्साहित था. आख़िर में खाने के पैकेट में पूड़ी-सब्ज़ी के अलावा और कुछ न पाकर मुझे निराशा ही हाथ लगी थी.

कुछ समय बाद विश्वजीत ने एक दिन मुझे एआईएसएफ का सदस्य बनने के लिए कहा. मैंने उनसे कहा कि मैं तो यूपीएससी की तैयारी करने आया हूं, मैं संगठन को समय नहीं दे पाऊंगा. उन्होंने कहा कि मुझे संगठन को समय देने की ज़रूरत नहीं है. मैं ध्यान पढ़ाई करने पर ही लगाऊं. लेकिन पढ़ने के साथ साथ लड़ना भी पड़ता है.

बात मेरी समझ में नहीं आई. आख़िर किस चीज़ के लिए लड़ना पड़ेगा? उन्होंने कॉलेज की बदहाली की तरफ़ ध्यान दिलाया. वहां बाथरूम नहीं है, लाइब्रेरी नहीं है, लड़कियों के साथ बदतमीज़ी होती है. इसके ख़िलाफ़ लड़ाई ज़रूरी है.

एक संगठन में शामिल होने के लिए यह वजह काफी नहीं लगी. लेकिन अंत में मैंने उनकी बात मान ली. आख़िरकार यह देश का सबसे पुराना संगठन जो था.

मैं एआईएसएफ की कुछ-कुछ गतिविधियों में शामिल होने लगा. उसमें भी ख़ास कर सेमिनारों, गोष्ठियों में शामिल होता. इन आयोजनों में जाने की एक ख़ास वजह थी. मुझे भाषण सुनना और वाद-विवाद में हिस्सा लेना शुरू से ही पसंद था. मैं कॉलेज में एक डिबेटिंग सोसायटी की गतिविधियों में हिस्सा लेता था और आमतौर पर पहला पुरस्कार जीतता था.

Downloaded from PDFmaza.com

एक अच्छी बहस करने और भाषण देने का राज यह है कि आपको अपने सामने मौजूद लोगों से सीधे बात करना आता हो. मुझे अहसास था कि मुझे अपने सामने मौजूद लोगों से अपने विचारों और अनुभवों के आधार पर जुड़ना चाहिए, न कि उन पर किताबों से ली गई खोखली बातों की बौछार करनी चाहिए, जो मेरे लिए प्रासंगिक नहीं थीं. कोई शख़्स समाज में अकेले नहीं रह सकता. उसे दुनिया से जुड़ना होता है और यह जुड़ाव उसके विचारों और उसके कामों के ज़रिए होता है. किसान अनाज उपजाते हैं, मज़दूर चीज़ें बनाते हैं और कलाकार, लेखक और राजनेता अपने विचारों को आवाज़ देकर लोगों से जुड़ते हैं.

बहसों के दौरान सबसे बेहतर तरीका यह है कि आप अपने श्रोताओं के मूड को भांप जाएं और फिर उसके मुताबिक अपनी बातें रखें. एक बहस का मकसद अपनी दलीलों को पेश करना है और जितना मुमकिन हो, लोग आपकी दलीलें समझें और उनसे सहमत हों. मैं हमेशा अपने श्रोताओं के मिजाज़ को जानने की कोशिश करता हूं और अगर वे किसी मुद्दे पर मुझसे असहमत होते हैं, मैं इसके बारे में सोचता हूं कि मैं उनकी राय कैसे बदल सकता हूं. उनको अपने से दूर नहीं करना है, बल्कि कैसे उनको धीरे-धीरे अपने करीब लाना है. यह विचारों की एक लड़ाई है, जिसमें न सिर्फ़ मुझे अपने विरोधी के विचारों का अंदाज़ा लगाना है बल्कि अपने श्रोताओं के मिजाज़ का भी पहले से पता रखना है.

इस बात से कॉलेज में मेरी एक पहचान बन गई थी. अरसे बाद मेरे जीवन में कुछ ऐसा हासिल हुआ था, जिसने मेरे जीवन को आसान बना दिया था. जीवन में अब तक कभी भी मुझे गंभीरता से नहीं लिया गया था. मेरी कद-काठी देख कर सरकारी दफ्तरों के बाबू मुझे झिड़क दिया करते. मेरी अनदेखी की जाती. लेकिन अब मुझे लोग गंभीरता से लेने लगे थे. प्रिंसिपल से लेकर चपरासी तक अब सब मुझे पहचानने लगे थे और वे मेरे हुनर से मुझे जानते थे, यह बड़ी बात थी. हालांकि एआईएसएफ में शामिल होने की वजह से लोग मुझसे थोड़ा डर कर और खिंचे हुए से भी रहते थे. प्रिंसिपल मुझे बुला कर समझाते कि मैं एक पढ़ने-लिखने वाला लड़का हूं, मैं क्यों इन झोला छाप लोगों के साथ घूमता रहता हूं. वे मुझे समझाते कि राजनीति फालतू चीज़ है.

काफी दिनों तक मुझे यह बात ठीक भी लगती थी, लेकिन जब राज्य की सरकार बदली और इसी के साथ उनकी कुर्सी छिन गई तो मुझे पता चला कि वो कितनी बड़ी राजनीति कर रहे थे. फायदेमंद पदों पर तैनात

Downloaded from PDFmaza.com

ज़्यादातर लोगों की तरह, वो भी सत्ताधारी राष्ट्रीय जनता दल (राजद) के समर्थक थे और जनता दल (यू) के शासन में उनका तबादला किसी और जगह पर कर दिया गया. राजनीति जब आपका सबकुछ तय करती है, उस वक़्त आपको राजनीति नहीं करने की सलाह देना सबसे बड़ी और खतरनाक राजनीति है. तभी से मैंने राजनीति नहीं करने की किसी भी सलाह को गंभीरता से नहीं लिया.

इन सबके बीच, मेरा ध्यान पढ़ाई पर ही ज़्यादा था. कॉलेज के ही एक पुराने छात्र प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी कराते थे. मैंने उनके यहां पढ़ने की राय ज़ाहिर की और यह भी बता दिया कि मेरे पास उन्हें देने के लिए फीस नहीं है. उन्होंने मुझे आने के लिए कह दिया.

हालांकि मेरा ज़्यादातर खाली वक़्त अब पढ़ने के बजाए पढ़ाने में जाता. मैं इतिहास, भूगोल और समाजशास्त्र विषयों की ट्यूशन पढ़ाता था. मेहनताना घंटे के हिसाब से मिलता था. हर घंटे के 15 रुपए, जो बाद में बढ़ कर 17 रुपए हो गया. यह हिंदी माध्यम से पढ़ाने की फीस थी. यही विषय अगर मैं अंग्रेज़ी में पढ़ाता तो 27 रुपए प्रति घंटे के हिसाब से मेहनताना मिलता.

इस तरह मेरा वक़्त बीतता रहा. पढ़ाई, एक्टिविज़्म, ट्यूशन यही मेरी व्यस्तताएं होतीं. अपना खर्च मैं खुद निकाल लेता था. इतनी व्यस्तताओं में तीन साल कैसे पूरे हुए, समझ में ही नहीं आया. बीए पूरा हो गया था और अब एमए में दाखिले का वक़्त आ गया.

एमए में मैं नियमित क्लास नहीं कर सकता था. यूपीएससी की मेरी अपनी कोचिंग थी, खर्च निकालने के लिए कोचिंग में पढ़ाना था. इसे देखते हुए मैंने तय किया कि वक़्त बचाने के लिए डिस्टेंस एजुकेशन से एमए किया जाए. मैंने नालंदा खुला विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र में एमए में नाम लिखा लिया. मेरे मन में यूपीएससी को लेकर दुविधा बढ़ने लगी थी. मैं समाज सेवा की जिस भावना से प्रेरित हुआ था, अब वह उतनी कारगर नहीं लग रही थी. मुझे यह साफ़ होता जा रहा था कि सिस्टम में जाकर समाज के लिए काम करने की संभावना नहीं बचती थी. एक बार उसमें शामिल होने के बाद उसे आप बदल नहीं सकते.

अपने संदेहों के बावजूद मैं नहीं चाहता था कि मेरी वह दुविधा बढ़े. पुरानी चिंताएं अब भी मेरे पीछे लगी हुई थीं: अपना खर्च निकालने के लिए कमाने का इंतज़ाम करना. किसी ने मुझे सुझाया कि अगर मैं दिल्ली में कोचिंग में पढ़ाऊं तो उन्हीं विषयों के लिए एक घंटे के 1000 रुपए मिलेंगे. इससे मैं न

Downloaded from PDFmaza.com

सिर्फ़ अपना खर्च निकाल सकूंगा, बल्कि यूपीएससी की कोचिंग की फीस भी जुटा सकूंगा, जबकि एमए मैं डिस्टेंस एजुकेशन से ही कर रहा था, क्लास करने की कोई बाध्यता थी नहीं. दिल्ली अब मुझे अपनी ओर खींच रही थी.

सही कहा गया है कि आप अपने पीछे जो रास्ते छोड़ देते हैं, उसी से आपका भविष्य तय होता है. मैंने बेरोज़गारी और अपराध के फंदे में पड़ने से बचने के लिए अपना गांव छोड़ा था. पटना ने मुझे आगे की राह दिखाई. अब पटना का आसमान भी छोटा लगने लगा था. शायद ऐसा इसलिए था, क्योंकि एक बार जब आप अपना घर छोड़ देते हैं, तो आप सबसे बेहतर जगह पर पहुंचना चाहते हैं.

हालांकि पटना ने मुझे बेगूसराय से बाहर की दुनिया से रू ब रू किया था, लेकिन पटना फिर भी मेरे लिए बहुत पराई जगह नहीं थी. न सिर्फ़ यह गांव से करीब था, बल्कि सांस्कृतिक रूप से भी मेरे गांव और शहर में बहुत ज़्यादा फर्क नहीं था. यहां भी मैं अक्सर ऐसे लोगों के बीच रहा था, जो पहले से ही मेरे परिवार के परिचित थे.

दिल्ली जाना इन सारी बातों से खुद को काट लेना था. इसका मतलब था पहली बार एक पराई जगह में जाना. यह एक तरह से मानसिक रूप से अपने परिवार से एक सीमा तक अलगाव भी पैदा करता. मैं अब तक जहां रहा था और अब जहां जाने वाला था, उनके बीच में सांस्कृतिक तौर पर फर्क तो था ही, आर्थिक ज़रूरतों के बारे में भी पक्का नहीं हुआ जा सकता था.

मुझे अपने परिवार को राज़ी कराना पड़ा. लेकिन उनके लिए इससे बहुत ज़्यादा फर्क नहीं पड़ने वाला था कि मैं पटना में रहूं या दिल्ली में, बशर्ते मैं अपनी पढ़ाई की ज़रूरतें पूरी करता रहूं. शायद उन्हें इसका यकीन हो गया था कि मैं जो कर रहा हूं, सोच-समझ कर ही कर रहा हूं.

इस तरह सात साल गुज़ारने के बाद 2009 में मैं दिल्ली के लिए रवाना हुआ. मेरे पास काफी सारा सामान था और मन में देश की राजधानी में जाकर पढ़ने, पढ़ाने और कुछ बन कर दिखाने का जज़्बा था.

Downloaded from PDFmaza.com

भाग 3दिल्ली

पटना से दिल्ली के लिए एक ट्रेन चलती है संपूर्ण क्रांति. संपूर्ण क्रांति जेपी (जयप्रकाश नारायण) का नारा था, जो उन्होंने 1970 के दशक में प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी का विरोध करते हुए दिया था. देश में तो संपूर्ण क्रांति नहीं आई, उनके अनुयायियों ने इस नाम से ट्रेन चला दी. और आजकल लोग उस संपूर्ण क्रांति ट्रेन पर बैठ कर जेपी के आंदोलन के समय की राजनीति की चर्चा करते हैं.

जेपी आंदोलन के समय की चर्चा करने की ख़ास वजह है. मौजूदा राजनीति में जो भी बड़े नाम हैं, कमोबेश वे उसी आंदोलन की उपज हैं. और इस तरह यह अच्छी ही बात थी कि मैं जुलाई के उस गर्म दिन में अपने नए ठिकाने, दिल्ली के लिए संपूर्ण क्रांति एक्स्प्रेस पर सवार हुआ. देश की राजधानी का सफर ट्रेन में राजनीति पर चर्चा करते हुए गुज़रा. हाल में चुनी गई कांग्रेस के नेतृत्व वाली संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यूपीए) दो सरकार सत्ता में थी लेकिन लोगों में सरकार के ख़िलाफ़ भावनाएं थीं. जो लोग सरकार के समर्थक थे, वो चुप रहना ही मुनासिब समझते थे और बाक़ी के लोग मुखर रहते थे. हालांकि आजकल स्थिति उल्टी है. आजकल सरकार की आलोचना करने वाले लोग चुप रहना मुनासिब समझते हैं.

हम कई सारी बातों पर चर्चा कर रहे थे – ख़ास कर हम नौजवानों और बेरोज़गारी पर तथा देहाती इलाकों में किसानों की आत्महत्या पर बातें कर रहे थे. सरकार ने पिछले साल किसानों का कर्ज़ माफ कर दिया था, लेकिन इसके बावजूद आत्महत्याएं जारी थीं. दो अंकों की राष्ट्रीय आर्थिक वृद्धि हासिल करने की चर्चा शोर में तब्दील हो गई थी. इस देश में सिर्फ़ एक ही सूचकांक मायने रखता है- शेयर बाज़ार सूचकांक. लाखों ज़िंदगियों को तबाह कर देने वाली बेरोज़गारी और किसानों की आत्महत्याओं के सूचकांक अहमियत नहीं रखते और न ही देश की आर्थिक सेहत की मोटी खाल पर इस दर्द का अहसास होता है.

नई दिल्ली स्टेशन पर गाड़ी पहुंची, तो मुझे कुली की ज़रूरत महसूस हुई. लेकिन मुझे उसे बुलाना नहीं पड़ा. एक कुली मुझे देखते ही मेरे पास आ गया. जब कुली अपनी ज़रूरत से आता है तो उसके भाव कुछ अलग होते हैं. लेकिन मेरे मामले में बात अलग थी. मेरा सामान और मेरी उम्र देख कर, जिसमें मैं थोड़ा बेचारा ही दिखता था, उसने जो दाम मांगा, मेरी जेब उसकी

Downloaded from PDFmaza.com

इजाज़त नहीं दे रही थी. हताशा में मैंने आसपास देखा और पार्सल यान से सामान ढोने के बाद एक खाली ठेले को गुज़रते देखा. मैंने ठेले वाले से बात की और वो कम दाम में ही मेरा सामान ढोने के लिए राज़ी हो गया.

स्टेशन से बाहर निकलते ही एक महिला दौड़ती हुई आई और जेब पर चरखे के निशान वाला तीन रंगों वाला एक झंडा लगाने लगी. मैंने उसे रोक दिया . पिछली बार जब मैं दिल्ली आया था, इसी तरह एक महिला ने जेब पर झंडा लगा कर मुझसे दस रुपए ले लिए थे. इस बार मैं सतर्क था. मैंने उसे मना कर दिया. इसको लेकर मैं मन ही मन खुशी से फूला हुआ था. इसके पहले मैं कुछेक बार दिल्ली आ चुका था – कॉलेज की तरफ़ से और एआईएसएफ के साथ. मुझे लगता था कि मैं शहर को जान गया हूं. कोई मुझे ठग नहीं सकता है.

स्टेशन के बाहर ऑटोरिक्शा वालों की भीड़ थी.

मुझे एक परिचित के पास अपना सामान रखने पश्चिमी दिल्ली में द्वारका मोड़ जाना था. इसके बाद मैं मुखर्जी नगर इलाके में रहने की जगह तलाशने जाना चाहता था. उत्तरी दिल्ली का यह इलाका दिल्ली विश्वविद्यालय (डीयू) की बगल में बसा हुआ है और यूपीएससी के कोचिंग सेंटरों का गढ़ है. पटना में हिसाब-किताब लगाते हुए मैंने सोचा था कि इन सेंटरों के करीब रहने से परीक्षा की तैयारी करने में आसानी होगी.

ऑटो वाले साढ़े तीन सौ किराया मांग रहे थे. मैं हैरान था. इतने मैं तो मैं पटना से दिल्ली आ गया था. मेरी बात सुन कर ऑटो वाले जवाब देते, 'साढ़े तीन सौ रुपए ही लगेंगे. अगर नहीं जाना तो इतने खर्च करके वापस पटना चले जाओ.' ये बड़े शहर का व्यंग्य था या अहंकार, मुझे समझ नहीं आया.

हर ऑटो वाला उतना ही किराया मांग रहा था. कोई और उपाय न देख कर मैं मान गया. जीत जाने का अहसास जल्दी ही भ्रम और खीझ में बदल गया. यह देश की राजधानी है और पूरी दुनिया से लोग यहां आते हैं. इस शहर में बहुत रहस्य छुपा है. कोई तीन सौ बार भी आए तब भी ये शहर कैसे काम करता है उसको जान लेना एक चुनौती होगी.

बड़े शहर में ठग लिए जाने का अहसास और गहरा गया. ऑटो में बैठे हुए मैंने पाया कि जिससे मैंने किराया तय किया था, वह आदमी ऑटो नहीं चला रहा था. यह कोई और था. मैंने ड्राइवर से पूछा कि वो दूसरा आदमी कौन था, और उसने बताया कि वह दलाल था, जिसका काम ग्राहकों से किराया तय करना है. जिन ग्राहकों के पास सामान ज़्यादा होता है, वो उसे

Downloaded from PDFmaza.com

छोड़ कर ऑटो तय करने नहीं आ सकते. और ऑटो वाले भी गाड़ी छोड़ कर ग्राहकों से बात करने नहीं जा सकते. इसलिए यह आदमी बीच में सौदे तय करता है और हरेक ग्राहक से सौ रुपए अपना हिस्सा लेता है.

यहीं मुझे यह भी पता लगा कि पार्सल यान का वह ठेलेवाला भी पहली बार मेरा सामान नहीं ढो रहा था. वह अक्सर ही खाली वक़्त में ग्राहकों का सामान लेकर उस ख़ास जगह पर छोड़ता है, जहां वह दलाल मौजूद होता है. उसे भी पता होता है कि ग्राहक सामान छोड़ कर ऑटो खोजने दूर नहीं जाएगा. इस तरह उस ठेलेवाले से लेकर इस ऑटो वाले तक, सब पहले से तयशुदा भूमिकाएं अदा कर रहे थे.

इस तरह कैसे हितों और कारोबारी संबंधों का जाल बनाकर कीमतें ऊंची रखी जाती हैं, मुझे समझ आ रहा था. बंदोबस्त इतनी बेहतरीन थी कि आप ठगे भी जाएं और आपको एहसास भी न हो.

लेकिन कड़वाहट दूर हो गई, जब मैंने जाना कि ऑटो वाला मुज़फ्फ़रपुर, बिहार का था. इस पराई जगह में उससे मिल कर मुझे एक अपनापन महसूस हुआ. दिल्ली में आधे से ज़्यादा ऑटो वाले बिहार से हैं.

उसी दिन शाम को मैं मुखर्जी नगर की तरफ़ निकल पड़ा. मुझे जल्दी से जल्दी अपने लिए एक कमरा देखना था. इस बार मैंने दिल्ली सरकार द्वारा चलाई जानेवाली डीटीसी की बस ली. एक ही दिन में मैं दो बार ठगे जाने के बाद मैंने तय कर लिया था कि तीसरी बार धोखा नहीं खाना है. डीटीसी और मेट्रो जैसी सार्वजनिक सेवाएं नहीं ठगती हैं. दिल्ली जैसे बड़े शहर में रहते हुए आगे चल कर मेरी यह पक्की राय बन गई है कि इस देश में पब्लिक सेक्टर को बचाने की लड़ाई दरअसल गरीब-गुरबों, दलित-पिछड़ों के हक़ की लड़ाई है. अगर कोई निजी बस सर्विस होती तो मेरे फिर से ठगे जाने की संभावना थी.

मैं जीटीबी नगर मेट्रो स्टेशन के पास उतरा. यहां से मुझे बत्रा सिनेमा जाने वाला शेयरिंग ऑटो लेकर मुखर्जी नगर जाना था. मुझे नहीं पता था कि इस ऑटो में प्रति सवारी पांच रुपए किराया लगता है. मुखर्जी नगर उतरने के बाद मैंने आदतन ऑटो वाले से किराया पूछ लिया. उसने मुझे घूर कर देखा. वह शायद समझ गया था कि मैं पहली बार इलाके में आया हूं. शायद वो मुझसे ज़्यादा किराया लेने की संभावनाओं को आंक रहा था. लेकिन तभी मैंने सभी सवारियों को पांच-पांच रुपए देते हुए देखा और मैं भी उतनी रकम देकर जल्दी से आगे बढ़ गया.

Downloaded from PDFmaza.com

मुझे पहले से बताया गया था कि मुखर्जी नगर में कमरा खोजने का आसान तरीका प्रॉपर्टी डीलर से संपर्क करना है. मुझे उनके बोर्ड दिखाई पड़ रहे थे. मुझे यह बात बड़ी अजीब लगी कि किराए का मकान दिलाने वाला खुद को प्रॉपर्टी डीलर कहता है. इसमें प्रॉपर्टी क्या थी? इस इलाके में ज़्यादातर लोग एक कमरा किराए पर लेने आते हैं. ज़्यादा से ज़्यादा उनका नाम शेल्टर डीलर होना चाहिए.

मैं एक डीलर के पास गया. मैंने उससे कहा कि मुझे एक कमरा चाहिए. उसने मेरा बजट जानना चाहा. मैं दो हज़ार रुपए तक खर्च कर सकता था. उसने कहा कि मुखर्जी नगर में किराया महंगा है, और उसने आसपास के गांधी विहार, नेहरू विहार, इंदिरा विहार और भाई परमानंद कॉलोनी के नाम सुझाए.

वो मुझे नेहरू विहार ले गया. बिहार से जब लोग मुखर्जी नगर के लिए चलते हैं तो सीधे नेहरू विहार के नाले में गिरते हैं जहां वे प्रॉपर्टी डीलिंग के धंधे की भूलभुलैया में खुद को उलझा हुआ पाते हैं, और उन्हें बेकार जगहों का बेहिसाब किराया सुनाया जाता है. लेकिन तब यह मुझे नहीं मालूम था.

हम कमरे देख ही रहे थे कि मेरी नज़र कुछ इश्तेहारों पर गई. अमूमन मैं दीवारों पर लगे मामूली दिखने वाले इश्तेहारों को पढ़ता चलता हूं. ये गरीबों के बिलबोर्ड होते हैं. ज़्यादातर पोस्टर ट्यूशन के थे, लेकिन कुछ में अंग्रेज़ी में 'नीड अ रूम पार्टनर' या 'नीड अ गर्ल रूम पार्टनर' भी लिखा था. मैंने सोचा कि क्या पहली तरह के इश्तेहार में लड़की या लड़का, दोनों तरह के रूम पार्टनर चलेंगे! इससे मुझे लगा कि यहां बड़ा खुला माहौल है.

उन्हीं इश्तेहारों के बीच एक पर मेरी नज़र टिक गई. इसमें फोन नंबर के साथ-साथ किराए की रकम भी लिखी हुई थी: बत्तीस सौ रुपए. इश्तेहार देने वाला मुझे समझदार लगा कि उसने किराए की रकम भी लिख दी थी. यह देखते ही मैंने प्रॉपर्टी डीलर को किसी तरह टाल कर लौटा दिया था. इसके बाद मैंने फौरन उस इश्तेहार में दिए गए नंबर पर फोन किया.

'हलो. भाई साहब, आपको रूम पार्टनर की ज़रूरत थी,' मैंने कहा.

फोन उठाने वाले लड़के ने कहा कि मैं अंग्रेज़ी में बोलूं. मुझे लगा कि यह बहुत योग्य, पढ़ा-लिखा लड़का है जो फोन पर भी सिर्फ़ अंग्रेज़ी में ही बात करता है. मैं खुश था. दिन में ठगे और लूटे जाने के बाद आख़िरकार मैंने एक अच्छा सौदा खोज निकाला था. अपनी टूटी-फूटी अंग्रेज़ी के सहारे मैंने उसके साथ पंद्रह मिनट के भीतर उसके कमरे पर मिलना तय किया.

Downloaded from PDFmaza.com

उसका कमरा मेरी उम्मीदों से बिल्कुल अलग था. चार-पांच किताबें, एक टेबल, एक कुर्सी और एक गद्दा, बस. एक तरफ़ भारत का नक्शा टंगा था. किचन खाली. बाथरूम के नाम पर सिर्फ़ लैट्रिन था, नहाने के लिए बाहर लगे नल का इस्तेमाल किया जाता था.

मेरा रूममेट बनने वाला वह लड़का अंग्रेज़ी बोलता था, इसलिए नहीं कि वह किसी और सामाजिक वर्ग से आता था. उसे हिंदी आती ही नहीं थी. वो केरल का रहनेवाला था. मुझे उसके साथ किराए में हिस्सा बंटाते हुए सोलह सौ रुपए हर महीने देने थे. बिजली का बिल भी इसमें शामिल था. मुझे यह बंदोबस्त पसंद आया और मैंने हां कह दिया.

उस रात नेहरू विहार से द्वारका लौटते हुए मैं बड़ा खुश था, कि शायद मैं पहला इंसान हूं जिसे दिल्ली में बिना प्रॉपर्टी डीलर के ही कमरा मिल गया. लेकिन बाद में मुझे पता चला कि मैं ग़लत था. हालांकि राजधानी में पहली रात मैंने यह अहसास करते हुए गुज़ारी कि मैं दिल्ली में रहने का हुनर जान गया था. अनुभव से बड़ा कोई ज्ञान नहीं होता. दिल्ली आकर अब मैं यही ज्ञान हासिल कर रहा था.

अभी मुझे उस कमरे में रहते हुए हफ्ता भर हुआ था कि उस लड़के ने मुझे बताया कि वो कमरा छोड़ कर जा रहा है. यह मेरे लिए आफत से कम नहीं था क्योंकि मुझे अब जल्द से जल्द या तो एक पार्टनर खोजना था या फिर कमरे के पूरे किराए का बोझ उठाना पड़ता. मेरे पास अपने खर्च के ही पैसे नहीं रहते, मैं पूरे कमरे का किराया कहां से देता? मैंने ट्यूशन पढ़ा कर अपना खर्च निकालने की पहले की अपनी योजना बदल ली थी.

मेरे बड़े भाई, जो असम में काम कर रहे थे, मुझे पहले साल पैसे देने के लिए राज़ी हो गए थे ताकि मैं सिर्फ़ पढ़ाई पर ध्यान दे पाऊं और इसलिए मैं अपने पैसों को लेकर और भी सावधान हो गया था. शहर में नया होने से पार्टनर खोजना आसान भी नहीं था. लेकिन मेरे पास और कोई विकल्प भी नहीं था. मैंने भी कुछ इश्तेहार वाले पोस्टर बनाने का फैसला किया और फिर फोन का इंतज़ार करने लगा.

चार-पांच दिन गुज़र गए लेकिन कोई कॉल नहीं आया. खर्च की चिंता के मारे पढ़ाई-लिखाई में भी मन नहीं लग रहा था. एक दिन मुझे लगा कि शायद किसी ने मेरे इश्तेहारों को ढंक दिया है और मैंने जाकर उन्हें चेक करने की सोची. किसी ने उन्हें ढंका नहीं था, बल्कि बड़ी होशियारी से मेरे

Downloaded from PDFmaza.com

इश्तेहार को अपना बना लिया था. उन्होंने मेरा फोन नंबर काट कर उसकी जगह अपना नंबर लिख दिया था. अब भला कॉल आता कैसे!

इसी दौरान एक दिन पटना के एक पुराने दोस्त से मेरी भेंट हुई. पहचान का आदमी देखकर मुझे बड़ी खुशी हुई और वो भी खुश हुआ. उसने बताया कि वो भी यूपीएससी की तैयारी करने के लिए दिल्ली आया था. लेकिन आजकल एचडीएफसी बैंक में नौकरी करता था.

उसकी कहानी सुनते हुए अचानक मुझे अपना भविष्य अंधकारमय नज़र आया. छोटे शहरों-कस्बों से लोग यूपीएससी की उड़ान भरते जो किसी बैंक के एक कोने में जाकर ख़त्म होती. मैं ऐसी ज़िंदगी नहीं चाहता था, लेकिन क्या मुझे भी यही ज़िंदगी मिलनी थी? मैंने उस विचार को मन से हटा दिया क्योंकि मैं ज़्यादा दुख लेने की स्थिति में नहीं था. मुझे वैसे ही रूम पार्टनर नहीं मिल रहा था. अगर भविष्य की ज़्यादा झलक देखूं, तो कुछ ज़्यादा ही अंधेरे से घिर जाता.

मेरे दोस्त ने मुझे बताया कि वो ए ब्लॉक में एक कमरा जानता है, जहां जाते ही फौरन रूम पार्टनर मिल जाएगा. इस तरह दिल्ली की ज़िंदगी के एक ऐसे क़ायदे का पता लगा, जिसको कहा नहीं जाता लेकिन जिस पर अमल होता है.

वर्णमाला में ए और डी में भले कोई भेदभाव न हो, लेकिन वास्तविक जीवन में ए और डी के बीच में बहुत भेदभाव है. ए ब्लॉक में दरअसल ज़्यादातर लोग आर्थिक रूप से संपन्न थे. डी ब्लॉक में ज़्यादातर मज़दूर वर्ग के लोग रहते थे. इन दोनों ब्लॉकों में सिर्फ़ मकान के ढांचे ही नहीं, माहौल में भी अंतर था. यहां शोर-शराबा भी ज़्यादा होता था. मैंने चूंकि सीधे कमरा ले लिया था, इसलिए मुझे इस फर्क की जानकारी नहीं हो पाई थी. अक्सर किसी संपर्क या डीलर के ज़रिए कमरा लेने वालों को इसकी जानकारी लग जाती थी और वे ए ब्लॉक में रहना पसंद करते थे. डी ब्लॉक में वही लोग रहते थे, जिनके पास कोई चारा नहीं होता.

जैसे ही मैं ए ब्लॉक में शिफ्ट हुआ, मैंने रूममेट के लिए एक पोस्टर लगा दिया. दूसरे ही दिन एक कॉल आया.

कॉल करने वाला लड़का उत्तर प्रदेश का था. उसका नाम पीयूष था. उसके पिताजी राज्य सरकार में किसी अच्छे पद पर थे. वह लड़का डीयू के हंसराज कॉलेज में पढ़ा हुआ था. स्मार्ट-सा लड़का था. सलीके से बात करनेवाला. उसे देख कर और बात करके लगा कि वह शहर में रचा-बसा

Downloaded from PDFmaza.com

लड़का था. बात पक्की हो गई. वह रहने आ गया. अपने साथ वह जो सामान लाया था, उससे न सिर्फ़ उसकी संपन्नता का पता लगता था, बल्कि इसकी भी झलक मिलती थी कि वह कितने व्यवस्थित तरीके से रहता था. उसके पास सारा ज़रूरी सामान था- पानी गर्म और ठंडा करने की चीज़ें, बड़ा सा रैक, अंग्रेज़ी किताबें.

पीयूष के आने के बाद से जीवन में पहली बार थोड़ी शांति आई थी. किचन का कोई सामान मेरे पास नहीं था. होटल में खाना महंगा पड़ रहा था. मैंने खाना खुद बनाने का सुझाव दिया लेकिन उसको खाना बनाना नहीं आता था. उसने सुझाव दिया कि एक रसोइया रख लिया जाए, भुगतान वो करेगा और जब मेरे भाई के पास से पैसे आएं, मैं चुका सकता हूं. हमने कपड़े धोने वाली एक महिला से भी बात पक्की कर ली.

ऐसा लगता था कि एक लंबे दिनों से चल रहे अकाल के दौरान बारिश होने लगी हो. मेरा नया रूम मेट सिर्फ़ रूम मेट नहीं था. वो मेरे लिए एक बहुत बड़े मददगार की तरह आया था.

मेरे साथ रहने में उसे भी बड़ी आसानी थी. मैं उसके किसी भी काम में कोई दखलंदाज़ी नहीं करता था. न ही मैं बेवजह उसके बारे में कुछ जानना चाहता.

वह कहां जाता है, किसको कमरे पर बुलाता है, इन सबसे मैं कोई मतलब नहीं रखता था. कई बार उसके साथ उसकी दोस्त लड़कियां आतीं, तो वह मुझे पहले ही बता देता. यह संकेत होता कि मुझे उस दौरान कमरे पर नहीं आना है. मुझे इससे कोई परेशानी भी नहीं थी.

हमारा रूटीन एक दूसरे से मेल नहीं खाता था. जब मैं जगता था, वो सोता था. कमरे का कोई काम वो नहीं करता था. पटना से ही मेरी आदत साफ़-सफाई खुद करने की थी. उसने मेरी मदद की थी और मुझे काम करना बुरा नहीं लगता. एक दिन इसी साफ़-सफाई के दौरान मुझे उसकी जाति पता लगी. उसके सर्टिफिकेट्स बाहर रह गए थे जो मुझे दिख गए. उनसे मुझे पता लगा कि वो एक दलित था.

गांव में जाति को लेकर मेरे मन में जो भी स्टीरियोटाइप छवि थी, वो चूर हो गई. पीयूष इतना संपन्न था, अच्छे ढंग से रहता था. उसकी अंग्रेज़ी मुझसे कहीं बेहतर थी. मैं उसकी उदारता और खुले दिल का कायल था, वो कभी-कभी पैसों से मेरी मदद करता. उसे देख कर कोई नहीं कह सकता था कि वो एक दलित है. संबंध जीवन की ज़रूरतों से बनते हैं. मुझे उसकी ज़रूरत

Downloaded from PDFmaza.com

थी और मैं जो कर रहा वो मेरे सामान्य व्यवहार का हिस्सा था. इसी तरह, वो जो कर रहा था वो उसके सामान्य व्यवहार का हिस्सा था.

दिल्ली के उन शुरुआती दिनों ने इसी तरह काफी कुछ सिखाया. सबलोग बड़े शहरों के बड़े अवसरों की बातें करते हैं. लेकिन कोई भी उन बड़ी चुनौतियों के बारे में नहीं बताता, जो वहां जीवन का हिस्सा हैं.

जिस सामाजिक जीवन के बीच मैं अब तक रहा था, उससे कहीं ज़्यादा विविधता से भरा दिल्ली शहर का जीवन था. यहां लोगों के बीच में कहीं अधिक गैरबराबरी और अंतर था. इसकी वजह से उनसे रिश्ते बनाना और निभाना दोनों ही मुश्किल हो जाता था.

इस प्रक्रिया में मैं इस शहर के तौर-तरीके अपनाने लगा था. मेरे पहनने का तरीका, बोलने का तरीका – सबकुछ बदलने लगा था. अब मैं अपने पहनावे को लेकर लापरवाह नहीं हो सकता था. मैं इसको पक्का करता कि मेरे कपड़े ठीक से साफ़ हों, प्रेस किए हुए हों और मुझ पर फिट आते हों. मैं इस बात को लेकर सजग हो गया था कि लोग मुझे देख कर मेरे बारे में राय बनाएंगे.

मेरी भाषा भी बदल रही थी – जिसे लोग 'बिहारी लहजा' कहते हैं. बिहारी लोग राज्य की स्थानीय भाषाओं जैसे मैथिली या भोजपुरी मिला कर हिंदी बोलते हैं. इस मिली-जुली भाषा से हिंदी भावनाओं और अहसासों से भरपूर हो जाती है और इसमें गैरमामूली शब्द घुल-मिल जाते हैं. मुझे अपनी हिंदी को मुफस्सिल के प्रभाव से मुक्त करने के लिए कड़ी मेहनत करनी पड़ी, ताकि मुझे हंसी और अपमान का सामना न करना पड़े. मैं सावधानी बरतता कि मेट्रो ट्रेन की फर्श पर न बैठूं, ज़ोर-ज़ोर से न हंसूं या बोलूं.

लेकिन शहर का नयापन छोटी-छोटी खुशियां लेकर भी आता. एक नई सड़क या गली पता लगती तो लगता कि एक नई दुनिया का दरवाज़ा मिल गया है. बड़े शहर में वे शुरुआती दिन रोमांच, खुशी और दर्द से भरे हुए थे. जब आप उस शहर के आदी हो जाते हैं, खुशी और दर्द दोनों ख़त्म हो जाते हैं.

दिल्ली में मैंने तय किया था कि मैं सक्रिय राजनीति से दूर रहूंगा. मैं अपनी पढ़ाई पर ध्यान देना और यूपीएससी परीक्षा पास करना चाहता था. लेकिन दो घटनाओं ने नए शहर में छह महीनों के भीतर ही मुझे एआईएसएफ के और करीब कर दिया.

Downloaded from PDFmaza.com

जनचेतना एक वामपंथी प्रकाशन है, जिसकी एक मोबाइल वैन घूम-घूम कर किताबें बेचती है. 10 जनवरी 2010 को डीयू में आर्ट्स फैकल्टी के पास लगी इस वैन पर अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद या एबीवीपी (आरएसएस के छात्र संगठन) से जुड़े कार्यकर्ताओं ने हमला करके तोड़-फोड़ की और कार्यकर्ताओं की पिटाई की. इसके ख़िलाफ़ अगले दिन डीयू में आर्ट्स फैकल्टी के पास विवेकानंद की प्रतिमा पर एक विरोध प्रदर्शन रखा गया था, जो डीयू में विरोध प्रदर्शनों की एक मशहूर जगह है.

मैं इस कार्यक्रम में शामिल हुआ. मुझे इस बात ने बेचैन किया था कि आख़िर किताबें बेचने वाली गाड़ी पर छात्रों का एक संगठन हमला कैसे कर सकता है. प्रदर्शन में कई सारे छात्र संगठन, संस्कृतिकर्मी और कार्यकर्ता आए थे. एबीवीपी ने इन प्रदर्शनकारियों पर भी हमला किया. पटना में मैं जिस तरह के विरोध प्रदर्शन देखता था, यह उनसे अलग था. यह ज़्यादा कलात्मक और ज़्यादा सज़ा-धजा था. पटना में हम सीधे-सपाट तरीके से नारे लगाते थे. वहां मुद्दा अपने जोश और गुस्से को ज़ाहिर करना होता था. दिल्ली में बात अलग थी. नारों में ज़्यादा रचनात्मकता थी और वे गीतों की तरह आकर्षक थे. इनमें जोश और गुस्सा भी था, लेकिन यहां सुनने वाले तक बात पहुंचाने के साथ-साथ उसको आकर्षित करने का मकसद भी होता.

इस प्रदर्शन में आए लोग भी अलग थे. वे संपन्न घरों के दिखते थे. उनके कपड़े अच्छे थे. मीटिंग में होने वाली बातें बौद्धिक रूप से ज़्यादा ऊंचे स्तर की थीं, आम इंसान के लिए ज़्यादा बड़ी बातें थीं जो शायद उन्हें नहीं समझ पाता. लेकिन कुल मिला कर सारी बातों ने मुझ पर असर डाला, क्योंकि मैं दक्षिणपंथ के बढ़ते हुए खतरे और इसके ख़िलाफ़ लोगों के एकजुट होने की ज़रूरत को देख सकता था. उस दिन जब मैं लौटा तो मुझे अच्छा लगा कि मैं विरोध प्रदर्शन में गया था.

दूसरी घटना इसके 10 दिनों के बाद नेहरू विहार इलाके में घटी, जहां मैं रह रहा था. नेहरू विहार में बड़ी संख्या में प्रवासी बिहारी रहते हैं, जिनमें ज़्यादातर सब्ज़ी बेचने वाले, दिहाड़ी मज़दूर, छात्र आदि हैं. कई मकानों के मालिक भी बिहारी हैं. इस वजह से इलाके में स्थानीय बनाम बाहरी का मुद्दा गरम रहता है और दोनों समूहों में तनाव बना रहता है. स्थानीय लोगों के लिए रामलीला और देवी का जागरण दो महत्वपूर्ण आयोजन होते, जिसके दौरान बड़ी संख्या में लोग जुटते थे. जबकि बाहर से आकर रहने वाले

Downloaded from PDFmaza.com

समूह अपने पेशों के लिहाज से अलग-अलग उत्सवों का आयोजन करते. बिहारी मज़दूर विश्वकर्मा पूजा करते, छात्र सरस्वती पूजा करते.

सरस्वती पूजा के दौरान स्थानीय लड़कों और बाहरी छात्रों के बीच झड़प हो गई. स्थानीय लड़कों के पास कोई काम नहीं था. उनके परिवार मकान के मालिक थे. ज़्यादातर वे दिन भर बेकार घूमते, पार्क में क्रिकेट खेलते. पूजा के दौरान कुछ लड़कों के बीच छोटी-सी मारपीट हुई, जो बढ़ते हुए एक बड़ी लड़ाई में तब्दील हो गई. जहां कोई छात्र दिखता, उसे बिहारी कह कर पीटा जाने लगा. माहौल में बहुत तनाव और असुरक्षा थी. दो-ढाई सौ स्थानीय लड़के डंडे लेकर इलाके में घूमते रहते. पढ़ने के लिए बाहर से आए लड़के अपने कमरों में छुपे रहते.

मुझे लगा कि इसमें दखल देकर इसे रोकना ज़रूरी है. मेरी आदत रही है कि अगर कोई किसी को पीट रहा है तो मैं वहां से नज़र बचा कर नहीं गुज़र सकता. यहां एक उन्मादी भीड़ तैयार थी. इसको अकेले नहीं रोका जा सकता था. इसके लिए संगठन और पहुंच की ज़रूरत थी. इसलिए मैंने एआईएसएफ के अपने एक साथी को फोन किया, जो डीयू के विधि विभाग में पढ़ाई कर रहा था. उससे मेरी मुलाकात एआईएसएफ के मासिक स्टडी सर्किल में हुई थी, जहां मैं इस बीच में आने-जाने लगा था. एआईएसएफ का कोई सक्रिय संगठन दिल्ली में नहीं था. मेरे जैसे दिल्ली में पढ़ने आए आधा-एक दर्जन छात्र एआईएसएफ के दफ्तर के संपर्क में रहते थे. लेकिन दफ्तर के संपर्क राजनेताओं और बुद्धिजीवियों से थे. मैंने सोचा कि हमें मदद के लिए किसी राजनीतिक नेता से कहना चाहिए.

उसके ज़रिए पुलिस से संपर्क करके जल्दी ही झगड़े पर नियंत्रण पा लिया गया. लेकिन इसने मेरे भीतर एक गांठ खोल दी थी. यह किसी वास्तविक हालात में दखल देने की मेरी पहली कोशिश थी. पढ़ने की धुन में मैंने खुद को ऐसे मुद्दों से दूर रखा था, लेकिन इस छोटी-सी कामयाबी ने मुझमें भरोसा जगा दिया. मैंने सोचा कि राजनीतिक दायरे के करीब रहने से अगर यह गंभीर समस्या सुलझ सकती है तो फिर एक एक्टिविस्ट के रूप में मैं और भी बड़ी चीज़ें कर सकता हूं.

इस झगड़े ने मेरे सामने नेहरू विहार की राजनीतिक सतहों को भी उजागर कर दिया था. प्रवासी मज़दूरों और छात्रों ने इस इलाके को समृद्ध बनाया था. दिल्ली के संपन्न लोग इन इलाकों में जाना पसंद नहीं करते थे. लेकिन इसके बावजूद यह इलाका इतना अहम बन गया, क्योंकि यह डीयू के

Downloaded from PDFmaza.com

नज़दीक था. छात्रों की वजह से इस इलाके में कोचिंग का व्यवसाय भी चल पड़ा. उनके अलावा दूसरे पेशों के लोग भी आकर रहने लगे.

विडंबना यह है कि इस कॉलोनी में सबसे पहले आकर बसने वाले भी प्रवासी ही थे – वे पाकिस्तान से आए शरणार्थी थे. लेकिन उन जड़ों को भुला दिया गया और इस नई हासिल हुई दौलत ने यहां के शुरुआती बाशिंदों को उग्र बना दिया. दूसरी तरफ़ वहां आकर रहने वाले छात्रों को भी इसका अहसास था कि उनकी वजह से यहां की अर्थव्यवस्था चलती है. ऐसे में वे इस बात को स्वीकार नहीं करते कि उन्हें बिहारी कह कर गाली दी जाए. ऐसी स्थिति में टकराव की संभावना पैदा हुई थी और अभी भी रहती है.

ये दोनों घटनाएं अलग-अलग तरह की थीं. पहली घटना पहले से प्रायोजित एक दंगे की तरह थी – जैसा कि गुजरात का 2002 का कत्लेआम था – जबकि दूसरी घटना पहचान पर आधारित उन्मादी भीड़ की हिंसा थी – जैसा मुंबई में होता आ रहा था. देश के दूसरे हिस्सों में अलग अलग पैमानों पर होने वाली हिंसा की मानो यह छोटी-सी झलक थी. जब राज्य मशीनरी और किसी राजनीतिक पार्टी की भागीदारी हिंसा में होती है तो पहले से उसकी एक पटकथा तैयार की जाती है.

मैंने सीखा कि मैं एक्टिविज़्म से दूर रहने के लिए अपनी पढ़ाई को बहाना नहीं बना सकता था. अगर कोई किसी को पीट रहा है तो मैं वहां से नज़र बचा कर नहीं गुज़र सकता.

लोग अन्याय के आदी हो जाते हैं. वे पिटते हैं और चूं तक नहीं करते. दो ही विकल्प थे - पिटना या फिर पीटना. मैंने तय किया कि मैं न पिटुंगा और न पीटूंगा, मैं अधिकारों के लिए और शोषण के ख़िलाफ़ लड़ने वाला बनूंगा.

मुझे पटना के कॉलेज में एआईएसएफ के शुरुआती दिनों में विश्वजीत द्वारा कही गई बात याद आ गई: लड़ो पढ़ाई करने को, पढ़ो समाज बदलने को. मेरे मन में यह बात आई कि मैं चाहे जहां हूं और जो भी करूं, मुझे एआईएसएफ से जुड़ना होगा और शहर में इसकी एक सक्रिय यूनिट बनानी होगी.

मैंने स्टडी सर्किल में नियमित जाना तय किया. यह महीने के किसी एक शनिवार को होता था. इसमें कोई एक व्यक्ति एक पेपर पढ़ता और बाक़ी लोग उस पर बहस करते. उन लोगों ने उसमें शामिल होने के लिए मुझे कहा. उस मीटिंग में लंदन से एक प्रोफेसर प्रीतम सिंह आए थे, जिन्होंने

Downloaded from PDFmaza.com

भारतीय अर्थव्यवस्था पर एक पेपर पढ़ा. उस मीटिंग में मैंने जिस तरह बहस में हिस्सा लिया, उससे लोगों का ध्यान मेरी ओर मुड़ा. मुझसे कहा गया कि मैं बेरोज़गारी पर एक पेपर लिख कर लाऊं और अगले स्टडी सर्किल में पढ़ूं.

मेरे पेपर को लोगों ने काफी पसंद किया. उस पर्चे में मैंने क्लासिकल मार्क्सवाद से अलग अपना एक नज़रिया रखा था. मार्क्स ने बढ़ती हुई जनसंख्या को समस्या नहीं माना था. उनके लिए पूंजी का जमा होना, गरीबी की मुख्य वजह थी. लेकिन मैंने दलील दी कि अगर जनसंख्या इसी तरह से बढ़ती रही तो एक दिन हम पूरी तबाही के कगार पर होंगे.

उस मीटिंग में जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय (जेएनयू) के एक प्रोफेसर एसएन मालाकार भी आए थे. इस मशहूर विश्वविद्यालय के किसी शख़्स के साथ यह पहली मुलाकात थी. मैं कभी जेएनयू नहीं आया था. डीयू में पढ़ने वाले मेरे साथी अक्सर जेएनयू आते-जाते थे, उन्होंने मुझसे कई बार चलने को कहा था. लेकिन मैं अपने कमरे में रहता और पढ़ता, मैं यूपीएससी को ही लक्ष्य बनाए हुए था. एक बार मैं ईमानदारी से कोशिश करना चाहता था.

मालाकार सर ने मुझसे असहमति जताई. उनका कहना था कि पूंजीपति वर्ग अतिरिक्त उत्पादन को हड़प लेता है और यही समस्या की वजह है, आबादी नहीं. लेकिन मैंने अपनी बात को तर्कों के साथ मज़बूती से रखा. हममें से किसी ने बहस नहीं जीती लेकिन विचारों के लेन-देन से मुझे काफी अच्छा महसूस हुआ. मैं प्रो. मालाकार और प्रीतम सिंह के कद के लोगों से कम ही मिला था या बातें की थीं. पहली बार मैं ऐसी मशहूर शख्सियतों से बहस कर रहा था और मुझे ऐसा महसूस नहीं हुआ कि वे मुझे बच्चा समझ रहे हैं या मुझ पर रौब जमा रहे हैं. वे मुझसे गहराई से असहमत थे, लेकिन वे मेरे साथ बराबरी से पेश आए.

उस साल मैं डीयू के छात्र संघ चुनावों में एआईएसएफ के उम्मीदवारों के लिए प्रचार अभियान में शामिल हुआ. तब मैं छात्र राजनीति के नए पहलू से वाकिफ हुआ. एबीवीपी और नेशनल स्टूडेंट्स यूनियन ऑफ इंडिया या एनएसयूआई (कांग्रेस के छात्र संगठन) जैसे संगठन छात्रों के वोट खरीदने के लिए धड़ल्ले से शराब और पैसे बांट रहे थे. राजनीतिक पार्टियां सीधे चुनावों में दखल दे रही थीं. बिहारी वोटरों को लुभाने के लिए एबीवीपी मशहूर भोजपुरी गायक मनोज तिवारी को ला रही थी तो एनएसयूआई फिल्म कलाकारों का कार्यक्रम आयोजित करा रहा था.

Downloaded from PDFmaza.com

देश में मतदाताओं को लुभाना और लालच देना आम है, चाहे छात्र राजनीति हो या व्यापक राजनीति. ऐसी राजनीति मतदाताओं के लिए नुकसानदेह ही है- मशहूर लोगों के नाम पर उन्हें एक ख़ास राजनीतिक दल के लिए वोट देने के लिए लुभाया जाता है. लेकिन ये चेहरे शेर का शिकार करने के लिए चारे के रूप में बांधी गई बकरी की तरह होते हैं.

पटना में एआईएसएफ छात्रों के अधिकारों के लिए लड़ती थी, लेकिन वह यहां कहीं नहीं थी. ऐसे माहौल में एआईएसएफ जैसे कम संसाधनों वाले, सैद्धांतिक संगठनों का टिक पाना मुश्किल था. इसके बावजूद हमारा एक उम्मीदवार जीत गया.

दिल्ली के वामपंथी राजनीतिक हलके में मेरे संपर्क गहराने लगे थे. अनिल राजिमवाले और कृष्णा झा जैसे राजनीतिक चिंतकों और लेखकों से मार्क्सवाद, सोवियत संघ के पतन और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टियों की नाकामियों को लेकर मेरी लगातार बातें होने लगी थीं. एआईएसएफ में भी दोबारा अब मेरी एक जगह बनने लगी थी. मैं सक्रिय राजनीति की तरफ़ धीरे-धीरे मुड़ने लगा था.

दिल्ली सज रही थी. यहां राष्ट्रमंडल खेल होने वाले थे. नेहरू विहार के अनेक लड़के वॉलंटियर बन रहे थे. देश की सेवा नहीं, टी शर्ट, ट्राउज़र और जूते हासिल करना उनका मकसद था.

पूरे देश में आयोजन के लिए भव्य तैयारियों और शानदार खर्च की खूब चर्चा थी. नायक थे तो खलनायक भी कम नहीं थे. पूरी दिल्ली से भिखारियों को उठा कर नोएडा में एक मैदान में ले जाकर बंद कर दिया गया था. शहर के बीच में मौजूद झुग्गियों के सामने बड़े-बड़े रंगीन पर्दे लगा कर उन्हें ढंक दिया गया था. गैरबराबरी पर टिके अपने बदसूरत हिस्सों को छुपा कर दिल्ली सज रही थी. ऐसा लगता था कि सरकार को समस्या गरीबी से नहीं है, उसे दिक्कत ये है कि गरीबी दूसरों के सामने न दिखे.

सौ साल पहले भी दिल्ली इसी तरह सज रही थी. 1911 में जॉर्ज पंचम भारत आ रहे थे. जॉर्ज पंचम का शाही जुलूस लाल किले से निकल कर दिल्ली (अब पुरानी दिल्ली) के विभिन्न इलाकों से गुज़रते हुए शाही दरबार में पहुंचना था. तब भी झुग्गियों पर सम्राट की निगाह न पड़े इसलिए उनको कपड़े के बड़े-बड़े पर्दों से ढंक दिया गया था. इतिहास खुद को दोहरा रहा था. फर्क सिर्फ़ यह था अब मुल्क आज़ाद था और कपड़े की जगह, कंप्यूटर से डिज़ाइन किए गए रंगीन फ्लेक्स के पर्दे इस्तेमाल में लाए जा रहे थे.

Downloaded from PDFmaza.com

इसी दौरान यूपीएससी की परीक्षा देने के मेरे सपने को आख़िरी धक्का लगा. मैं अब तक परीक्षा की तैयारी ही करता रहा था और कभी परीक्षा नहीं दी थी. और अब अक्तूबर 2010 में उस परीक्षा का सिलेबस बदल दिया गया. मैं हैरान था. नए सिरे से तैयारी के लिए नई कोचिंग क्लासेज़ लेनी पड़तीं. यह संभव नहीं था. मुझे और लाख रुपयों की ज़रूरत पड़ती. फिर, मेरे बड़े भाई साहब की भी शादी हो गई थी और मैं अब उन पर अतिरिक्त खर्च का बोझ नहीं डाल सकता था.

यूपीएससी ने सिर्फ़ मेरा सपना ही नहीं तोड़ा था. ऐसे सैकड़ों नौजवान यूपी-बिहार और देश के दूसरे इलाकों से दिल्ली आते हैं. कुछ बनना उनका सपना होता है. वे अपने मां-बाप की मेहनत की कमाई में से बचाए जाने वाली रकम हिचक-हिचक कर खर्च करते हैं. वे पैदल चलते हैं, कम खाते हैं, गिने-चुने कपड़ों में दिन गुज़ारते हैं और एक दिन पाते हैं कि वे एक मामूली सी नौकरी लायक भी नहीं रह गए हैं.

हर साल करीब एक हज़ार सीटें, तीन लाख लोगों की उम्मीदों की नीलामी पर लगाती हैं. जिनकी ऊंची बोली लगती है वे नायक बन जाते हैं, लेकिन जो छूट जाते हैं वे भीड़ में गुम हो जाते हैं. नेहरू विहार में रहते हुए मैंने हताश और निराश युवाओं की एक फौज देखी थी. देखा था कि किस तरह नाकामी दर नाकामी उन्हें वेश्यावृत्ति और नशे की आगोश में डुबोती जाती. कई बार ये ऐसे रूप में सामने आती कि आप सोच भी नहीं सकते.

एक ऐसे ही लड़के को मैं करीब से जानता था. वह इलाके में 15 अगस्त और 26 जनवरी के उत्सव मनाता था. उसने मुझे ऐसे ही एक आयोजन के लिए बुलाया तो हमारी जान-पहचान हुई. वह यूपीएससी के बड़े सपने लेकर शहर आया था. साल बीते, परीक्षाएं हुईं, नतीजे निकले लेकिन उसके हाथ हमेशा नाकामी ही आई.

धीरे-धीरे वह धार्मिक होने लगा. शुरू में उसने कमरे में किसी भगवान की एक तस्वीर लगाई. धीरे-धीरे संख्या बढ़ती गई. कमरा अगरबत्ती के धुएं से भरा रहने लगा. 26 जनवरी और 15 अगस्त के आयोजन बंद हो गए. आगे चल कर मैंने देखा कि वह लड़का साधु हो गया. गंडा-ताबीज़ करने लगा, हाथ की लकीरें और कुंडली जांचने लगा.

उन्हीं दिनों एमए का मेरा रिज़ल्ट आया जिसकी पढ़ाई मैं पटना के दिनों से नालंदा खुला विवि से कर रहा था. मैं उसमें सेकेंड डिवीज़न से पास हुआ था. मैं दूर की शिक्षा के अनुभव से नाखुश था – कोई शक नहीं था कि दूर

Downloaded from PDFmaza.com

की शिक्षा आपको शिक्षा से दूर ही रखती है. अपने मामूली नतीजों के बावजूद मैंने मैंने सोच लिया कि एकेडमिक्स ही मेरे लिए बेहतर जगह होगी, रोज़ी रोटी के सवाल को हल करते हुए सचेतन ज़िंदगी जीने के लिए यह अच्छी जगह है. यह अकेला प्रोफेशन था, जिसका विचारों और सीखने में मेरी रुचि के साथ तालमेल था और जहां मैं अपने सपनों पर काम कर सकता था. पहली बार मैं किसी चीज़ को लेकर आत्मसंतुष्टि और भौतिक परिस्थिति के बीच कोई अंतर्विरोध नहीं देख पा रहा था.

एआईएसएफ के स्टडी सर्किल के दौरान मैंने मालाकार सर से बातचीत की. उन्होंने एमफिल के लिए जेएनयू का फॉर्म भरने का सुझाव दिया. मैंने नेहरू विहार से फॉर्म खरीदा और उसे भर कर पोस्ट कर दिया. वहीं रहते हुए ही परीक्षा दी और वहीं रहते हुए ही मुझे जेएनयू की लिखित प्रवेश परीक्षा पास करने की सूचना मिली.

मैंने स्कूल ऑफ इंटरनेशनल स्टडीज़ के दो केंद्रों के लिए फॉर्म भरा था: सेंटर फॉर रशियन एंड सेंट्रल एशियन स्टडीज़ और सेंटर फॉर अफ्रीकन स्टडीज़. मैं यहां मालाकार सर के अलावा किसी को जानता नहीं था. वे अफ्रीकन स्टडीज़ सेंटर में प्रोफेसर थे, इसलिए फॉर्म भरते वक़्त मैंने अफ्रीकन स्टडीज़ को ही पहली प्राथमिकता पर रखा था. मुझे लगा था कि मैंने रशियन स्टडीज़ को प्राथमिकता पर रखा होता, तो मुझे उसमें मार्क्सवाद, लेनिनवाद को विस्तार से पढ़ने मौका मिलता. लेकिन चुनाव तो हो चुका था. इसे अफ्रीकन स्टडीज़ ही होना था. इस तरह जेएनयू में मेरा दाखिला हुआ.

यह एक ऐसा फैसला था, जो मेरी ज़िंदगी को पूरी तरह बदल देने वाला था.

Downloaded from PDFmaza.com

भाग 4जेएनयू

जेएनयू के साथ अपनी पहली मुलाकात को आप जीवन भर नहीं भूल पाते.

लेकिन मुझे यह कहना होगा कि अपनी पहली मुलाकात में मुख्य प्रवेश द्वार, नॉर्थ गेट ने मुझे निराश किया था. यह इतना साधारण-सा था कि इसे देख कर लगता नहीं था कि यह इतना बड़ा विश्वविद्यालय है.

मुझे ब्रह्मपुत्र होस्टल जाना था. मेरे दोस्त के कुछ दोस्त वहां रहते थे और मुझे उनसे मिल कर अपने एमफिल वाइवा के लिए मदद लेनी थी. नॉर्थ गेट पर तैनात गार्ड ने बताया कि ब्रह्मपुत्र होस्टल सबसे आख़िर में है और उसने मुझे बस ले लेने की सलाह दी. लेकिन मैंने पैदल चलने का ही फैसला किया.

नॉर्थ गेट से ब्रह्मपुत्र होस्टल की दूरी करीब दो किलोमीटर है. लेकिन मैं नहीं जानता था कि यह मेरी ज़िंदगी की सबसे अहम यात्रा बनने वाली थी. हरेक कदम के साथ में अपनी पुरानी ज़िंदगी को कहीं पीछे छोड़ता जा रहा था.

मुख्य द्वार देख कर जो निराशा मुझे हुई थी, वह कैंपस के भीतर दाखिल होते ही दूर हो गई. घुसते ही यकीन नहीं हुआ कि ये जगह वाक़ई दिल्ली में है. बारिश का मौसम था. दूर तक हरियाली पसरी हुई थी. पहाड़ मुझे हमेशा से खूबसूरत लगते हैं. ऊंचे-नीचे रास्ते, नीलगाय, मोर. यह मन को मोह लेने वाली एक अलग ही दुनिया थी.

उस दिन जेएनयू के बारे में एक और अनोखा अनुभव हुआ. एक बाइक सवार को एक बस ने टक्कर मार दी थी. हालांकि कोई बड़ा नुकसान नहीं हुआ था, लेकिन नौजवानों की एक भीड़ जमा हो गई थी. वे दो समूहों में बंट गए. एक पक्ष कैंपस के भीतर लापरवाही से बस चलाने के लिए बस ड्राइवरों पर खफा था. वो उस ड्राइवर को पीटना चाहता था. दूसरा पक्ष इससे असहमत था. उसका कहना था कि अगर ड्राइवर की ग़लती है तो उसको पुलिस को सौंप दिया जाए. हम उसे पीटने वाले कौन होते हैं.

मेरी हैरानी का अंत नहीं था. यह कैसी यूनिवर्सिटी थी, जहां नौजवान, टक्कर मारने वाले एक ड्राइवर से खुद बदला लेने के बजाए उसे कानून के हवाले करने की दलील दे रहे थे? अब तक मैंने यही देखा था कि ऐसे मौकों पर

Downloaded from PDFmaza.com

लोग ताक़त का ही इस्तेमाल करते हैं, दिमाग का नहीं. यहां दिमाग का इस्तेमाल हो रहा था.

उस रात मैं जेएनयू में ही रुका. जिस छात्र के पास मैं आया था, उसके पास रुकने की जगह नहीं थी, लेकिन उसने मुझे रात में रुकने के लिए एक दूसरे होस्टल – झेलम – में भेज दिया. होस्टल का माहौल मुझे बेहद पसंद आया.

खूब सारी किताबें. बिछावन, जिन पर एक साथ तीन-चार आदमी सो रहे थे. लड़के और लड़कियों के होस्टल या फिर एक ही होस्टल में रहने के हिस्से अलग-अलग थे, लेकिन लड़कियां लड़कों के होस्टलों में आज़ादी से आ-जा रही थीं. शुरू-शुरू में अजीब लगने वाली यह बात बाद में स्वाभाविक, सही और खूबसूरत लगने लगी. यह एडमिशन के लिए वाइवा का दौर था और हर जगह लोग अपने परिचितों के पास इसकी तैयारी के लिए आए हुए थे. इस वजह से जितने लोगों के लिए कमरे आवंटित थे, उनसे ज़्यादा लोग उनमें रह रहे थे. यहां के होस्टल देख कर लगा कि जो लोग इस विश्वविद्यालय के हैं, ये सिर्फ़ उनका ही शेल्टर नहीं है. जिन लोगों के पास दिल्ली में रहने की जगह नहीं होती और वे जेएनयू में दाखिला पाना चाहते हैं, उन्हें दाखिले से पहले ही जेएनयू में एक जगह मिल जाती है. पहली बार मुझे लगा कि मैं एक विश्वविद्यालय में था. मैंने सोचा, सीखने की सारी जगहों को ऐसा ही होना चाहिए.

किसी अनजान आदमी के लिए रात के वक़्त जेएनयू में कहीं जाना किसी भूलभुलैए में चलने से कम नहीं है. और रात के वक़्त मेस में खाना खाने के बाद जेएनयू में रास्ते भूल जाना मुझे अच्छा लग रहा था. एक बात ने मुझे चौंकाया. रात के दो बजे थे. और लड़कियां कैंपस की सड़कों पर अकेली घूम रही थीं. इतने जंगल थे, पहाड़ थे; लड़कियों के लिए ऐसे में अकेले घूमना कितना सुरक्षित होगा?

उस रात मैं किसी तरह सोने गया. लेकिन मेरी नींद अचानक खुल गई – एक हवाई जहाज़ होस्टल के ठीक ऊपर से गुज़र रहा था और उसकी तेज़ आवाज़ ने मुझे जगा दिया था. मैं जिनके कमरे में था, उनसे मैंने पूछा कि ऐसे में वो सोते कैसे हैं. उन्होंने कहा, 'ठीक से इंटरव्यू की तैयारी कर लो, जवाब तुम्हें खुद मिल जाएगा,' और वो फिर सो गए.

वाइवा के दिन मैं अच्छे से तैयार होकर आया था. वहां आए हुए कुछ छात्रों को देख कर मुझे अजीब लगा. लग नहीं रहा था कि वे किसी इंटरव्यू के लिए आए हुए थे. वाइवा के लिए आए हुए लोगों की दो किस्में थीं. एक मेरी तरह

Downloaded from PDFmaza.com

के लोग थे, जो मांगे हुए बेल्ट और जूते पहन कर आए थे. दूसरी किस्म के लोग वो थे, जिनके कंधे पर एक झोला था, जिन्हें इस बात की परवाह नहीं थी कि वे कैसे दिख रहे हैं - उनके पैरों में जूते हैं कि चप्पल, दाढ़ी बनी हुई है कि नहीं. बुलाए जाने पर डरते हुए मैं भीतर गया. लेकिन शिक्षकों के व्यवहार ने मेरे सारे डर को दूर कर दिया. मुझसे पहला ही सवाल पूछा गया कि आप हिंदी में वाइवा देना चाहते हैं या अंग्रेज़ी में. मैंने हिंदी कहा और सारे सवाल हिंदी में पूछे गए.

नतीजे आए तो मुझे एमफिल के लिए चुन लिया गया था. मैंने नेहरू विहार का कमरा छोड़ दिया और एक बैग लेकर जेएनयू चला आया. कुछ दिनों में मुझे सतलज होस्टल में कमरा मिल गया, जो झेलम की बगल में है. सुदूर गांव से आकर, शहर की चकाचौंध में रहने के बाद जेएनयू पहुंचकर जीवन के एक अलग ही पहलू से मेरा परिचय हुआ.

चीज़ें मेरे लिए अब भी नई थीं. यहां सीनियर और जूनियर का कोई भेद नहीं था. मैं जिस ब्रह्मपुत्र होस्टल में आकर रुका था, वो जेएनयू के सबसे सीनियर छात्रों का होस्टल है. लेकिन वहां के लोगों का व्यवहार मेरे साथ इतना बराबरी वाला था, कि मुझे इसका अहसास ही नहीं हुआ कि मैं अभी-अभी इस कैंपस में आया हूं.

एक दिन मेरी बहस हो रही थी. मैं बढ़-चढ़ कर अपनी दलीलें रख रहा था. एक वक़्त पर मुझे अहसास हुआ कि मैं कुछ ज़्यादा बोल रहा हूं. मैंने एक सीनियर से कहा कि अगर मैं ज़्यादा बोल गया हूं तो मुझे माफ कीजिएगा. उन्होंने कहा, 'अरे, माफी मांग कर क्यों शर्मिंदा कर रहे हो?' बिहार के सामंती परिवेश से आया लड़का ऐसे किसी जवाब की उम्मीद नहीं करेगा.

जेएनयू कैंपस में रहना एक सांस्कृतिक झटका देता है. लोग यहां बहुत आज़ादी से रहते थे. लड़के-लड़कियां देर रात तक साथ में घूमते थे. बिहार में कॉलेजों में लड़के-लड़कियों को साथ बैठने के लिए जगह खोजनी पड़ती है. कोई ऐसी जगह भी नहीं होती थी, जहां वे एक साथ बैठ सकें. अगर वे बैठ जाएं और पकड़े जाएं तो उन्हें दंड भी मिल सकता था. लेकिन जेएनयू में ऐसी पाबंदियां नहीं थीं.

महिलाएं अपने अधिकारों को लेकर बराबर सचेत थीं. किसी भी मामले में वे पुरुषों से कम नहीं थीं. चाहे नारा लगाना हो, डफली बजाना हो, नए छात्रों के साथ जाकर उनका एडमिशन कराना हो. अपनी विचारधारा से लोगों को जोड़ना हो. इन तमाम चीज़ों में उनकी बराबर की भागीदारी थी. चाहे

Downloaded from PDFmaza.com

क्लासरूम हो, प्रदर्शन हो या फिर ढाबे हों, कहीं भी महिलाओं का प्रतिनिधित्व पुरुषों से कम नहीं था. कई जगह तो ज़्यादा ही था. जैसे मेरी क्लास में मैं अकेला लड़का था. बाक़ी नौ लड़कियां थीं.

क्लासरूम, क्लासरूम जैसा नहीं लगा. गोलमेज़ के साथ वह किसी सम्मेलन कक्ष की तरह लग रहा था. पहले दिन शिक्षक के आते ही मैं आदतन खड़ा हो गया. उन्होंने पूछा, 'क्यों खड़े हो रहे हो? ये स्कूल है क्या?'

मैंने कहा, 'स्कूल ही तो है. बाहर लिखा हुआ है स्कूल ऑफ इंटरनेशनल स्टडीज़.'

मेरे जवाब पर वे हंसने लगे. उन्होंने मुझे बैठने को कहा. यहां के शिक्षक भी अलग तरह के थे. वे भी शिक्षकों की तरह व्यवहार करने के बजाए, छात्रों से दोस्ताना और बराबरी भरा व्यवहार करना पसंद करते थे. जल्दी ही मैं यह जान गया कि जेएनयू में मैं किसी भी प्रोफेसर की बात पर सवाल उठा सकता हूं, उनसे असहमत हो सकता हूं. हमारी बहसें बराबरी के आधार पर होतीं. और हमारी अपनी भाषा में होतीं.

हर दिन मुझे लगता कि मैं कुछ नया सीख रहा हूं, शुरुआत के उन दिनों में मैं हर दिन कुछ न कुछ अनोखी बात खोज निकालता. जेएनयू के पहले मैं अलग-अलग संस्कृतियों और जगहों के लोगों से बहुत कम मिला था. अब मैं देश बल्कि दुनिया भर से आए लोगों से मिल रहा था. सतलज होस्टल में मेरे शुरुआती दो रूममेट्स में से एक बिहार से था और दूसरा राजस्थान से. अपने राजस्थानी रूममेट से मेरी अच्छी दोस्ती हो गई. पहली बार मेरा एक अच्छा दोस्त बना, जो बिहार से नहीं था.

आपको अलग-अलग देशों के लोगों को देखना हो तो उन देशों की यात्रा करनी पड़ेगी. जेएनयू में कहीं गए बिना आपको सारी चीज़ें एक जगह मिल जाएंगी. यहां आम आदमी का घुसना आसान है, विशिष्टों का घुसना मुश्किल होता है. क्योंकि वे जिस विशिष्टता की चाहत रखते हैं, वो जेएनयू नहीं देता.

जेएनयू के गार्ड का काम लोगों को भगाना नहीं, उनकी मदद करना है. वह चोरों को मार कर भगाएगा, ठीक है. लेकिन हर कोई चोर तो नहीं है. अगर आप गरीब हैं तो आप चोरी-बेईमानी के दायरे में माने जाते हैं. जबकि सच्चाई यह है कि चोरी-बेईमानी करके ही आपको गरीब बनाया गया है. गरीब आदमी गरीब तब बनता है जब उसकी मेहनत की चोरी करके, उसके साथ

Downloaded from PDFmaza.com

बेईमानी की जाती है. उसे ही चोर कहना ऐसा ही है जैसे उल्टा चोर कोतवाल को डांटे.

मैंने यहां जो कुछ देखा, उसने दुनिया को देखने का मेरा नज़रिया बदल दिया. उसने मेरी राजनीति को और धारदार बनाया. मसलन अगर आप ताजमहल देखें तो आपको उसके आगे अपने छोटे होने का अहसास होगा. इसकी खूबसूरती और भव्यता के आगे हम झुकेंगे और मुग्ध हो जाएंगे. लेकिन जेएनयू में रह कर ताजमहल देखने जाएं तो आपको महसूस होगा कि यह हम-आप जैसे लोगों के खून-पसीने का शोषण करके बनाई गई इमारत है.

मैंने जाना कि यहां राजनीति करने के लिए आपको अच्छी अंग्रेज़ी आनी ज़रूरी नहीं है. चमकदार सफेद कपड़े ज़रूरी नहीं हैं. काफी सारा पैसा ज़रूरी नहीं है. यहां तक कि कई बार बहुत बड़ा संगठन होना भी ज़रूरी नहीं है. अगर आप गरीब तबके से आते हैं और उसी की बात करते हैं तो आपकी बात गाड़ी वाले और सफेद पोशाक वाले से ज़्यादा प्रभावशाली होती है. अगर कोई गरीब नहीं है लेकिन गरीबी की राजनीति करता है तो जेएनयू में लोग उसकी बात पर भरोसा नहीं करेंगे. या फिर संदेह रखेंगे.

पूरी दुनिया में फुटपाथ पर चलने वाले लोग राजनीति के हाशिए पर हैं. जेएनयू में वही लोग राजनीति का नेतृत्व करते हैं. इसीलिए वे अपने फुटपाथ को बचा पाए हैं. बाहर फुटपाथी लोगों के रहने तक की जगह नहीं होती. उन्हें फुटपाथ पर ही बसना पड़ता है. जेएनयू में वे ज्ञान का उत्पादन करने के स्तर तक पहुंचते हैं.

बाहर की राजनीति में इसका उल्टा होता है. वहां लोग ये सोचते हैं कि जो खुद ही कमज़ोर है, वो हमारी क्या मदद करेगा. इसलिए वहां ताक़त का प्रदर्शन अहम हो जाता है. जबकि जेएनयू के भीतर सच का पक्ष लेना और उसे स्थापित करना ज़रूरी हो जाता है.

राजनीति हर जगह है, क्लासरूम में, मेस में, मीटिंग्स में और सबसे बढ़ कर ढाबों पर. चाय और चर्चा के असली अड्डे यही हैं. सबसे मशहूर ढाबा है गंगा ढाबा. मैंने जेएनयू के बारे में एक गीत सुना था. इसमें कहा गया था कि 'छोड़ो मैक्डी और सीसीडी को, आओ तुमको गंगा ढाबा की चाय पिलाते हैं'. यहां चाय से ज़्यादा चर्चा महत्वपूर्ण है, खाने से ज़्यादा सोहबत अहम है. जो चर्चा और सोहबत आपको गंगा ढाबे पर मिलती है, वह आपको कहीं नहीं मिलेगी.

Downloaded from PDFmaza.com

शाम का मेरा वक़्त गंगा ढाबा पर बीतता था. 2014 में मोदी जी चाय पर चर्चा करते थे कि देश को कैसे बेचा जाए. लेकिन मोदी जी से अरसा पहले से गंगा ढाबा की चाय पर चर्चा इस पर होती है कि देश के अवाम और उसके अधिकारों को कैसे बचाया जाए. अब जब जेएनयू प्रशासन जेएनयू के ढाबों को बंद करने की कोशिश कर रहा है, असल में यह विश्वविद्यालय के बहसों और चर्चाओं की उस संस्कृति को ही ख़त्म करने की कोशिश कर रहा है. यह खुले माहौल और सवाल करने की संस्कृति से डरता है, जो यहां फलती फूलती है.

मैं यूपीएससी की राह छोड़ने के बाद एक्टिविज़्म करना चाहता था. लेकिन हमेशा मैं इस कशमकश में रहता कि राजनीति करूं या फिर अपनी परीक्षाओं पर ध्यान दूं और अपने भविष्य की चिंता करूं. अब जेएनयू के रूप में मुझे एक जगह मिली थी, जहां मैं पढ़ते हुए सक्रिय हो सकता था. यहां की दीवारों पर लगे बड़े-बड़े पोस्टर मुझे अपनी तरफ़ खींचते.

जेएनयू में मेरी राजनीतिक सक्रियता की शुरुआत मेरे अपने दाखिला लेने से पहले ही शुरू हो गई थी. जेएनयू में नामांकन प्रक्रिया में नए आने वालों की मदद करने (एडमिशन असिस्टेंस) का एक अनोखा चलन है. छात्र संगठन प्रशासनिक भवन के पास अपनी अपनी हेल्प डेस्क लगाते हैं और दाखिला कराने आने वाले नए छात्रों की लंबे-चौड़े फॉर्म भरने और अलग-अलग ऑफिसों में जाकर वेरिफिकेशन कराने में मदद करते हैं.

मैं ऐसी जगह से आता हूं, जहां गेट और भव्य और सुंदर-सी इमारत देख कर लोगों को चक्कर आने लगते हैं. उन लोगों को उसमें घुसने तक की हिम्मत नहीं होती. और फिर इतने सारे कागज़ भरना तो उनके लिए एक सज़ा ही हो जाएगी. जेएनयू में आने वाले ज़्यादातर छात्र ऐसी ही सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमियों से आते हैं. ऐसे में, पुराने छात्रों और कार्यकर्ताओं द्वारा उनकी मदद करना एक सुखद अनुभव था.

लेकिन इसमें एक और एजेंडा भी काम करता है – राजनीतिक संगठनों के हेल्प डेस्क नए छात्रों को आकर्षित करने का ज़रिया भी होते हैं. हरेक के झंडों का अपना-अलग रंग था. मैं एआईएसएफ के लाल झंडे की ओर बढ़ गया और दूसरे सदस्यों की मदद करने लगा. इस तरह अपने दाखिले से पहले ही मैं राजनीति में सक्रिय हो गया.

टेंट और टेबल की साइज़ देख कर सोचने-समझने वाला कोई भी इंसान इसका अंदाज़ा लगा सकता है कि यहां पर शासक पार्टी का छात्र संगठन

Downloaded from PDFmaza.com

कौन-सा है. किसी संगठन की हेल्प डेस्क के ऊपर धूप रोकने के लिए कोई शेड नहीं था, सिवाय दो संगठनों के. ये संगठन भाजपा और कांग्रेस के जुड़े छात्र संगठन क्रमश: एबीवीपी और एनएसयूआई थे. विडंबना ये थी कि उनकी डेस्क सबसे ज़्यादा सजी-संवरी भले थी, वहां वीरानी छाई हुई थी. मुख्य होड़ वामपंथी संगठनों के बीच में ही थी.

मुझे यकीन है, इसे पढ़ते हुए आप हंस रहे होंगे. शायद आप सोच रहे हों कि यूटोपिया का कोई वजूद नहीं होता. और सच है कि शुरू के कुछ महीने मैं अपने नए विश्वविद्यालय की जगमग पर फिदा था. लेकिन ज्यों-ज्यों मेरी राजनीतिक सक्रियता बढ़ी, इस शानदार इमारत की दरारें मुझे दिखने लगी थीं.

मिसाल के लिए बाहरी समाज में जातिवाद दिखता है, जेएनयू के अंदर का जातिवाद नहीं दिखता. लेकिन वह होता है. ज़रूरी नहीं कि ज़ोर से नारे लगाने वाला आदमी सचमुच उन बातों पर अमल भी करता हो, जिन्हें वह चिल्ला-चिल्ला कर बोल रहा है. ब्राह्मणवाद मुर्दाबाद कहनेवाला हो सकता है कि घोर ब्राह्मणवादी हो.

जब मैंने चुनाव लड़े, मैंने जेएनयू के बदसूरत पहलू को भी देखा. उम्मीदवार चुनने में जाति का ख़ास खयाल रखा जाता है. सेंटर और उसमें छात्रों की संख्या का भी ख्याल रखा जाता है. हालांकि यह दूसरा मानक प्रतिनिधित्व के नज़रिए से एक सही कदम है, लेकिन सैद्धांतिक रूप से यह बात मुझे अनुचित लगी. अच्छी और बुरी चीज़ें हमेशा एक साथ मौजूद रहती हैं. यहां भी ऐसा ही था.

अपनी खामियों के बावजूद, जेएनयू में विरोध के लिए हमेशा ही एक जगह रहती है. चाहे वो होस्टल की समस्या हो, पानी नहीं आता हो, समय पर फेलोशिप नहीं मिल रही हो, कोई राजनीतिक-सामाजिक-सांस्कृतिक मुद्दा हो या फलस्तीन पर इस्राइल के हमले जैसी अंतरराष्ट्रीय राजनीति का मामला हो - तमाम सवालों पर प्रदर्शन होते थे, जुलूस निकलते थे, मीटिंगें होती थीं. जब मैं नया-नया आया था, संकीर्णता से थोड़ा बचा हुआ था, तो मैं सभी संगठनों, एबीवीपी तक की मीटिंगों में जाता था. उनमें वक़्ताओं से सवाल भी पूछता था.

सवाल पूछने की आदत क्लासरूम से ही शुरू हुई. भारत सरकार अफ्रीका में अनेक तरह की पहलक़दमियां कर रही थी. दोतरफा रिश्तों को मज़बूत करने की कोशिश हो रही थी. मैंने अपनी टूटी-फूटी अंग्रेज़ी में सवाल किया

Downloaded from PDFmaza.com

कि कहीं अफ्रीका को दोबारा उपनिवेश तो नहीं बनाया जा रहा है! पहले ब्रिटेन और दूसरे यूरोपीय देश अफ्रीका के संसाधनों को लूटने में सक्रिय रूप से आगे रहते थे, क्या अब भारत भी उनमें शामिल हो रहा है? क्या अफ्रीका के लोगों और भारत के लोगों के बीच रिश्ते बेहतर हो रहे हैं? या फिर इसके अवसर बनाए जा रहे हैं कि भारतीय व्यापारी अफ्रीका के बाज़ारों में अपना माल बेच सकें?

सबकी निगाहें मेरी ओर मुड़ीं. क्लासरूम के बाहर अब तक एक वामपंथी के रूप में मेरी पहचान बन चुकी थी. क्लासरूम के भीतर ऐसा पहली बार हो रहा था. क्लास से निकलने के बाद लोगों ने मुझसे पूछा, तुम मार्क्सिस्ट हो क्या? मैंने कहा कि मुझे नहीं पता, बस मेरे मन में जो उठा वो मैंने पूछ दिया था.

जेएनयू में लोगों की ब्रांडिंग बड़ी जल्दी होती है. कोई भी सीधे आपकी विचारधारा या जाति नहीं पूछेगा. लेकिन चुपचाप यह पता लगाता रहेगा और आपसे कोई बात किए बिना ही आपके बारे में राय बना लेगा. आपको हमेशा आपके संगठन से जोड़ कर देखा जाएगा और आपके संगठन ने किसी मुद्दे जो भी सही या ग़लत रुख अपनाया हो, आपसे उम्मीद की जाएगी कि आप उसका समर्थन करें.

एबीवीपी की एक बैठक में साधु जैसा दिखने वाला एक आदमी अध्यात्म पर बोल रहा था. वो बोल रहा था कि कर्मों के आधार पर फल मिलता है और पुराने कर्मों के आधार पर आपका अगला जन्म होता है. मैंने उनसे पूछा कि पहली बार जब ब्रह्मा ने दुनिया बनाई होगी, तो उन्होंने कैसे योनि निर्धारित की होगी? तब तो किसी का कोई कर्म ही नहीं रहा होगा.

मेरे सवाल का जवाब देने के बजाए उन्होंने मेरी हिंदी पर व्याख्यान देना शुरू किया. वे कहने लगे कि मेरी हिंदी बड़ी अच्छी है. मेरे बोल बड़े मीठे हैं आदि. उनके पास जवाब ही नहीं था और न ही उन्होंने उसका जवाब देने की कोशिश की. वक़्त बीतने के साथ धीरे-धीरे मुझे इसका अहसास हो गया कि एबीवीपी की मीटिंग में आप सवाल नहीं पूछ सकते हैं. अगर आप सवाल पूछेंगे तो या तो आपको जवाब नहीं मिलेगा या फिर आपको सवाल पूछने ही नहीं दिया जाएगा. वामपंथियों की मीटिंग में तमाम खामियों के बावजूद – और इसके बावजूद कि आपको आपकी पार्टी से ही जोड़ कर देखा जाएगा – एक अच्छी बात ये थी कि आपको सवाल पूछने दिया जाएगा. जवाब भले वो अपने तरीके से दें.

Downloaded from PDFmaza.com

एक लंबी यात्रा में, एक अनजान रास्ते पर चलते हुए भटक जाना और फिर आख़िर में चोटी पर पहुंचना रोमांचक होता है. पहले से तयशुदा, सीधा रास्ता तो उबाऊ और नीरस होता है. राजनीति भी मेरे लिए कुछ ऐसी ही थी. ख़ास कर विश्वविद्यालय के शुरुआती कुछ महीनों में. मैं हर चीज़ को आज़मा रहा था. उत्साह में सवाल पूछता. हर चीज़ में दखल देने की कोशिश करता.

जब कोई यह कहता है कि राजनीति में भटक गया हूं, तो वह यह बात मुझे अच्छी नहीं लगती. दरअसल मैं भटक कर ही राजनीति में आया हूं. मैं राजनीति में नहीं भटका हूं. ज़िंदगी में धक्के खाए हैं, और धक्के खाकर राजनीति में आया हूं. मैं चाहता हूं कि जो लोग धक्के खा रहे हैं, वो राजनीति में आएं. इसके अलावा कोई और विकल्प नहीं है. क्योंकि धक्का देना भी वही जानते हैं. जैसे प्रेमचंद कहते हैं कि आपने आषाढ़ की तपती धूप नहीं देखी, तो बरसात की पहली बूंद का मज़ा आपको नहीं आएगा. जिसके जीवन में दर्द नहीं है, उसके अंदर सुकून की चाहत नहीं होगी. अगर सुकून मिलेगा भी, तो उसको पता नहीं चलेगा कि उसके जीवन में सुकून है. जिसने तेज़ भूख की आग महसूस नहीं की, उसे खाने का मज़ा नहीं आता. स्वाद के पीछे आप तभी जाते हैं, जब पेट थोड़ा भरा हो.

जब मैं जेएनयू में दाखिल हुआ तो उसने मुझे दुत्कारा नहीं, जैसा कि देश में गरीब आदमी के साथ होता है. एक गरीब जब मेट्रो में या मॉल में घुसता है, तो लोगों की हिकारत को आप महसूस कर सकते हैं. यह आपके आत्मविश्वास को पहले ही कुचल देता है. दूसरी तरफ़ जेएनयू का वह साधारण सा गेट ऐसे खड़ा था, मानो कह रहा हो कि आओ, यह तुम्हारे लिए ही है.

यह आपके आत्मविश्वास को बढ़ा देता है.

हर जगह पर नारे लगाने का अपना तरीका होता है. जेएनयू में भी अपना एक तरीका है. मैंने पहली बार यहीं देखा कि लोग डफली बजा कर नारे लगाते हैं और नारों को धुन में गाया जाता है. मैंने यहीं आकर डफली बजाना सीखा.

गांव में अगर किसी साज को आपने छेड़ दिया तो उस्ताद आपको डांटेगा मानो आपने कोई बहुत बड़ी ग़लती कर दी. इप्टा के दिनों में मेरे गांव में ऐसा खूब होता. एक बार मैंने उस्ताद को कहा कि आपने भी तो कभी सीखा होगा. वो कहते कि उन्होंने इसी तरह उस्ताद से डांट खा-खा कर सीखा है.

Downloaded from PDFmaza.com

कोई भी इंसान जन्म से ही कुछ सीख कर नहीं आता है. उसे सीखना पड़ता है. ज़रूरी होता है उसे सीखने का मौका और हौसला मिलना. अर्जुन को मौका मिला तो वे धनुर्धर बन गए. एकलव्य ने मौका नहीं मिलने के बावजूद अपनी मेहनत और हौसले से धनुष चलाना सीख लिया तो उनका अंगूठा काट लिया गया. मेरिट जैसी कोई चीज़ नहीं होती है. अवसर अहम होता है. और जेएनयू इसे अपनी ज़िंदगी में जीता है.

जेएनयू से बाहर की यही संस्कृति है. आपको सीखने के लिए डांट खानी पड़ती है. जेएनयू में आपको ग़लती करके सीखने की जगह मिलती है. सभी विश्वविद्यालयों को ऐसा ही होना चाहिए.

शुरू-शुरू में मैं भीड़ में खड़े होकर लोगों को नारेबाज़ी करते देखता था. फिर मैंने भीड़ के बीच से ही नारे लगाना शुरू किया. फिर किसी दिन लगा कि मैं भी नारा लगाना शुरू करूं. मैं भी कहूं इन्कलाब ज़िंदाबाद.

जेएनयू में अगर आप नए हैं, तब भी आपके नारा लगाते ही दूसरे लोग चुप हो जाएंगे और आपको नारा लगाने देंगे. दूसरी जगह आपके नारा लगाते ही दूसरे या तो आपका साथ नहीं देंगे या फिर कोई आपसे तेज़ नारे लगाने लगेगा. यहां आपको लोग बोलने देते हैं. भले आप सही अंदाज़ में नारा नहीं लगा रहे हों, लेकिन कोई आपका मज़ाक नहीं उड़ाएगा. बल्कि आपकी तारीफ करके आपका उत्साह बढ़ाया जाएगा, ताकि आप सही अंदाज़ सीख सकें.

मैं स्कूल से ही भाषण देता आ रहा हूं. लेकिन वहां डिबेट का एक बना-बनाया तरीका होता था. हमारा मकसद उन आयोजनों में पुरस्कार या प्रतियोगिता जीतना होता था. लेकिन जेएनयू में हमारा मकसद छात्रों को अपनी बात पर सहमत करना और उन्हें अपने नज़रिए के करीब लाना होता है. अक्सर हम राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय राजनीति और दूरदराज़ के गांवों के मुद्दों पर ब्योरे और ज़ोर-शोर से दलीलें देते हैं. असली चुनौती बहस के बाद भी अपने विचारों पर कायम रहने की होती है. आप छात्रों का भरोसा इसी तरह जीतते हैं. यहां सिर्फ़ कहने भर को कोई समझदारी भरी दलील देने से काम नहीं चलता.

इसे जानने-सीखने में मुझे थोड़ा वक़्त लगा. मैं सारे वक़्ताओं को गौर से सुनता कि वो कब, कैसे, क्या बोलते हैं. धीरे-धीरे मैंने भाषण देने की बारीकियां समझीं. लेकिन मैंने किसी की शैली की कोई नकल नहीं की.

Downloaded from PDFmaza.com

क्योंकि भाषण द्वारा आपको अपनी राजनीति और अपना मुद्दा रखना होता है.

मैं जो कहना चाहता था वो इससे तय होता मैं दुनिया को किस तरह देखता हूं. मैंने तय किया कि अपनी बात ऐसे रखनी है कि लोगों को आसानी से समझ में आए.

लोग अक्सर मेरे भाषणों के बारे में पूछते हैं. आपको जानकर हैरानी हो सकती है कि मैं कभी अपने भाषण नहीं लिखता और न ही मेरे भाषण कोई और लिखता है. मेरे भाषण लोगों से मेरी बातचीत के बीच बनते हैं – हर बातचीत और हर बहस में कुछ बातें जुड़ जाती हैं, हर बार मेरे कुछ विचार आगे बढ़ते जाते हैं जबकि कुछ छोड़ दिए जाते हैं. हर जगह मैं लोगों से बातें करने की कोशिश करता हूं, जानने की कोशिश करता हूं कि लोग किन बातों पर सोच रहे हैं, उनकी चिंताएं क्या हैं और वे इसे किस तरह कह रहे हैं.

तो आप कह सकते हैं कि मेरे भाषण मेरी बातचीत का ही एक विस्तार हैं – इसीलिए गंगा ढाबा मेरे लिए इतना अहम था! मैं रोज़मर्रा की छोटी-छोटी बातों और दृश्यों को अपनी दलील में बुनने की कोशिश करता हूं. ताकि जब भी मेरे श्रोता जीवन के असली मुद्दों का सामना करें, तो उन्हें इसके पीछे की राजनीति भी याद आ जाए. इस तरह संदेश उनके दिल में जगह बना लेता है. कभी भी मैं मन से बातें बनाने की कोशिश नहीं करता. मैं खुद को एक आईने की तरह देखता हूं, जिसमें लोगों की झलक मिलती है, जो उनकी चिंताओं को लेता है, उसमें बड़ी राजनीतिक तस्वीर को जोड़ कर उन्हें अपने भाषणों के ज़रिए वापस उनको लौटा देता है.

एक बार मुझे जेएनयू के सुरक्षा गार्डों के सामने बोलना था. जेएनयू में सुरक्षा गार्ड एक निजी सुरक्षा एजेंसी के ज़रिए काम पर रखे जाते हैं, उनमें से ज़्यादातर से बहुत कम वेतन पर बहुत अधिक काम लिया जाता है और काम की असुरक्षा की वजह से संगठित होकर लड़ भी नहीं पाते. मुझे उन्हें यह बात समझानी थी कि उन्हें निजी एजेंसी पर निर्भर रहने के बजाए अपने अधिकारों के लिए लड़ना होगा और जेएनयू प्रशासन से न्यूनतम मज़दूरी के लिए कहना होगा.

यह बात समझाने के लिए मैंने उन्हें एक किस्सा सुनाया. मैंने कहा कि अगर उन्हें अपने किसी परिचित के ज़रिए किसी सेठजी की दुकान पर काम लग जाए, तो ज़रूरत पड़ने पर वे सेठजी के सामने अपनी शिकायत लेकर पहुंचेंगे या उस परिचित के पास? परिचित तो महज़ एक दलाल है. मांग तो

Downloaded from PDFmaza.com

आप उससे करेंगे, जिसके यहां नौकरी कर रहे हैं. यह सीधी-सी बात गार्डों को समझ में आई और इससे वे अपनी खुद की स्थिति से जोड़ कर देख सके.

आप जो कह रहे हैं, अगर श्रोता उसे समझ कर उन्हें अपने जीवन का हिस्सा नहीं बना लेते, तो आपकी बात राजनीतिक रूप से कितनी भी सही क्यों न हो, वह बेकार जाती है. मेरी कोशिश होती है कि मैं उन्हीं बातों को आसान तरीके से कहूं. इसलिए उन्हें अपने श्रोताओं को देखते हुए उदाहरणों और किस्सों में पिरोने की कोशिश करता हूं. मैं कविताओं का उपयोग करने की कोशिश भी करता हूं. लेकिन मैं कविताओं का बहुत अच्छा पाठक नहीं रहा हूं. मैंने बहुत थोड़ी कविताएं कहीं-कहीं से सुन रखी हैं और जहां मैं उनका इस्तेमाल कर सकता हूं, करता हूं.

जेएनयू में पहला भाषण मार्च 2012 में दिया, जब मैं अपने स्कूल से काउंसिलर पद के लिए चुनाव में खड़ा हुआ. उन दिनों छात्र संघ नहीं था. छात्र संघ चुनावों में पैसे और बाहुबल को रोकने के नाम पर 2006 में लिंगदोह कमेटी रिपोर्ट आई थी. इसमें अन्य बातों के अलावा उम्मीदवारों की उम्र की सीमा रखने की सिफारिश की गई थी और कहा गया था कि छात्र संघ पदों के लिए छात्र सिर्फ़ एक बार ही चुनाव लड़ सकते हैं. इसने किसी भी छात्र की उम्मीदवारी को रद्द करने का अधिकार भी विश्वविद्यालय और कॉलेज प्रशासन को दे दिया था.

इन सिफारिशों के गंभीर नतीजे होते. अगर इन्हें लागू कर दिया जाता तो यह कैंपस के राजनीतिक जीवन को ही कुचल देता और छात्र नेताओं के विकास को बाधित कर देता जो कई बरस तक अपने कामों के ज़रिए छात्रों के बीच और छात्र राजनीति में जगह बनाते हैं. इसके अलावा यूनियन ठीक उसी प्रशासन पर निर्भर हो जाता, जिससे छात्रों के अधिकारों के लिए इसको लड़ना था.

स्वाभाविक था कि जेएनयू छात्र संघ ने सिफारिशों को मानने से इन्कार कर दिया था. और अक्तूबर 2008 में सर्वोच्च न्यायालय ने जेएनयू छात्र संघ चुनावों पर रोक लगा दी. शुरू-शुरू में छात्र संघ संविधान के मुताबिक विश्वविद्यालय के छात्रों की महासभा (यूजीबीएम) में एकमत से पुराने चुने हुए छात्र संघ को विस्तार देकर काम चलाया जाता रहा, लेकिन 2010 में छात्र संघ के नेतृत्व ने इस्तीफा दे दिया. इसके बाद से कोई छात्र संघ नहीं था.

Downloaded from PDFmaza.com

आख़िरकार जनवरी 2012 में फैसला लिया गया कि लिंगदोह कमेटी की सिफारिशों में कुछ रियायतों के साथ चुनाव कराए जाएंगे.

सुप्रीम कोर्ट ने चुनावों पर से रोक हटा ली. मार्च 2012 में चुनाव होने थे. कैंपस के माहौल में एक नई तरह की सरगर्मी थी. हम करीब चार साल के बाद चुनाव देख रहे थे. माहौल में जो उत्साह था, उसको महसूस किया जा सकता था- आनेवाले चुनाव ही हर जगह पर बहसों का मुद्दा बन गए थे, चाहे वह होस्टल हो, मेस हो या ढाबा हो.

छात्र महसूस कर रहे थे कि अब उनके पास एक यूनियन होगा जो उनकी मांगों को उठाएगा और उनके अधिकारों के लिए लड़ेगा. छात्रों में उत्सुकता थी कि कौन-कौन लोग उम्मीदवार बनेंगे. मेस में, ढाबों पर, क्लास से लौटते हुए छात्रों के बीच इन्हीं बातों पर चर्चा चलती. लोगों के चलने, बात करने, आकर मिलने के लहजे में उनकी उम्मीदवारी की ख्वाहिशें तलाशी जा रही थीं. वे अब ज़्यादा आत्मीयता और ज़्यादा प्यार से मिल रहे थे. माहौल में यह बदलाव एक ही साथ मुझे उलझन में भी डाल रहा था और अच्छा भी लग रहा था.

एआईएसएफ की एक मीटिंग में तय हुआ कि स्टूडेंट्स फेडरेशन ऑफ इंडिया (एसएफआई) के साथ गठबंधन बनाया जाएगा, जो भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) से जुड़ा एक छात्र संगठन है.

कैंपस में जब मैं लोगों को बताता कि एआईएसएफ में हूं, तो उनकी प्रतिक्रिया होती, यह कौन-सा संगठन है! मुझे हैरानी होती कि जेएनयू जैसे राजनीतिक रूप से सक्रिय और सजग कैंपस में लोग देश के सबसे पुराने छात्र संगठन के बारे में नहीं जानते, जिसने आज़ादी की लड़ाई में भी हिस्सा लिया था. फिर मेरी समझ में आया कि यह सूचना नहीं होने की बात नहीं थी, यह हमारे वजूद को नकारने और हमें नीचा दिखाने का एक तरीका था.

गठबंधन बना. दोनों वाम संगठन एक साथ आए. हमारे मुख्य विरोधियों में एक तरफ़ सांप्रदायिक विचारों वाला एबीवीपी था, तो दूसरी तरफ़ अवसरवादी ऑल इंडिया स्टूडेंट्स असोसिएशन (आइसा) था, जो भाकपा (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) लिबरेशन का छात्र संगठन है और जो पिछले कई बरसों से यूनियन का नेतृत्व करता आ रहा था. हम लोग जिनके ख़िलाफ़ एकजुट हो रहे थे, उसमें एक वामपंथी संगठन भी था. ये वाम एकता कैसी वाम एकता थी? हमारा इरादा सभी वामपंथी ताकतों को एकजुट करने का

Downloaded from PDFmaza.com

था और आख़िर में हम एक ऐसे संगठन के ख़िलाफ़ एकजुट हो रहे थे, जो वामपंथी था.

एआईएसएफ एक छोटा संगठन था, लोग कम थे. इसलिए मुझसे पहले साल में ही चुनाव लड़ने को कहा गया. मैंने कभी चुनाव लड़ने के बारे में नहीं सोचा था. पटना में हम चुनाव कराने के लिए लड़ते थे और यही नारा लगाते हुए मैं पटना से दिल्ली आ गया था. लेकिन सच कहूं तो मैंने कभी चुनाव देखा नहीं था. और अब जब मैं पहली बार चुनाव देखने जा रहा था तो मुझसे कहा जा रहा था कि मैं इसमें उम्मीदवार बन जाऊं. मैंने टालने की काफी कोशिश की. मैंने कहा कि मेरी अंग्रेज़ी काफी कमज़ोर है, कोर्सवर्क चल रहा है, पढ़ाई-लिखाई में काफी दिक्कत होगी. लेकिन आख़िर में मुझे मना लिया गया.

चुनाव प्रचार के दौरान चुनावी राजनीति में अनुभव की कमी से कई बार मैं रू ब रू हुआ. मैं लोगों के बीच में अपना प्रचार करते हुए अपना परिचय देता, लेकिन उनसे वोट मांगना भूल जाता. मैं जेएनयू में नया था. इसलिए जब मैं प्रचार के लिए लोगों के कमरे में जाता तो मैं उनका कमरा देखने में लग जाता. मैं वहां रखी किताबें, दीवारों पर लगे पोस्टर देखता. देखता कि वे कैसे रहते हैं. मेरे साथ गए कैंपेन इंचार्ज को मुझे टोकना पड़ता कि मैं अपना परिचय दूं. मैं परिचय देकर चुप हो जाता.

छात्र पूछते, मैं क्यों आया हूं. मैं कहता, मैं चुनाव लड़ रहा हूं. वो पूछते, चुनाव लड़ रहे हैं तो हमारे पास क्यों आए हैं. मैं कहता, वोट मांगने. तब वे हंस कर कहते, तो वोट मांगिए ना. आप तो चुपचाप खड़े हैं.

मैं काफी नर्वस था. अपने प्रचार की पर्ची देते हुए मैं अपना परिचय देते झिझकता, जब तक कैंपेन इंचार्ज ऐसा करने को नहीं कहते. अनजान लोगों से बात करने में मुश्किल आती. यह बहुत मुश्किल था. मुझे इसको लेकर काफी परेशानी और अटपटापन महसूस होता.

बस एक ही बात थी, जिसने मुझे उबारा. लोगों के सामने भाषण देने में मुझे कभी दिक्कत नहीं होती – शायद इसमें आमने-सामने की बातचीत से अलग कोई हुनर चाहिए होता है – और इस बार भी यह बात सही साबित हुई. मेरा वो पहला भाषण जेनेरल बॉडी मीटिंग (जीबीएम) में हुआ था, जो एक स्कूल के सभी छात्रों की एक आमसभा होती है. वोटिंग से पहले हर स्कूल में स्कूल के छात्रों की यह आमसभा (स्कूल जीबीएम) होती है, जिसमें उस स्कूल की काउंसिल के सभी उम्मीदवार अपनी बात रखते हैं.

Downloaded from PDFmaza.com

मेरे पहले भाषण के बाद कई लोगों ने आकर कहा था कि कॉमरेड आपने अच्छा भाषण दिया. उसमें मैंने यही कहा था कि मैं चुनाव आइसा के ख़िलाफ़ नहीं लड़ रहा हूं. मैं चुनाव इसलिए नहीं लड़ रहा हूं कि मुझे काउंसिलर बनना है और आगे चल कर सेंट्रल पैनल में जीतना है. मैंने कहा था कि मैं चुनाव इसलिए लड़ रहा हूं कि हमें आगे बढ़ कर एबीवीपी को हराना चाहिए. यह बात आइसा के लोगों को भी अच्छी लगी. एसएफआई के लोगों को भी अच्छी लगी. बाक़ी सबको मेरी बात अच्छी लगी. लेकिन एबीवीपी ने मुझे वहीं से निशाने पर ले लिया.

जेएनयू आने के बाद एबीवीपी के बारे में मैंने कुछ बातों पर गौर किया था. मुझे एक बात बड़ी अजीब लगती. एबीवीपी के लोग जेएनयू में रहते हैं. यहां के लोकतांत्रिक स्पेस का फायदा उठाते हैं, लेकिन लगातार वे ठीक उन्हीं वामपंथी ताक़तों और कार्यकर्ताओं के साथ-साथ जेएनयू को बदनाम करते रहते हैं, जिन्होंने इस लोकतंत्र के लिए इतनी लड़ाई लड़ी है. मेस में खाना खाते हुए अक्सर उनकी चर्चा का विषय जेएनयू ही होता था. वे अक्सर इसे कोसते कि दुनिया के विश्वविद्यालयों में जेएनयू का कहीं कोई स्थान नहीं है.

मेरे मन में यह मासूम-सा सवाल उठता कि अगर जेएनयू इतना ही ख़राब है तो ये लोग नाम कटा कर बाहर क्यों नहीं चले जाते? बाद में मेरी समझ में आया कि शायद ये लोग इसलिए ऐसा बोलते हैं क्योंकि यहां ये खुद को नगण्य महसूस करते हैं. यहां इनको अपनी बात कहने का स्पेस और हक़ तो है, लेकिन इनको यहां कोई सही नहीं ठहराता.

मुझे लगा कि अगर ऐसे लोग जेएनयू में राजनीतिक रूप से मज़बूत होते हैं तो जेएनयू नहीं बचेगा. वह जेएनयू जहां दिहाड़ी मज़दूरी करने वाली किसी गरीब, दलित, आदिवासी, पिछड़े, अल्पसंख्यक की बेटी या बेटा पीएचडी कर पाता है. हमारे अधिकार और हमारा स्पेस नहीं बचेगा. वह एक ऐसा जेएनयू होगा, जहां एक भव्य गेट बनेगा, बैरियर लगाया जाएगा, जहां कोई गरीब 'अन्य' आकर ही उसकी भव्यता से आतंकित हो जाएगा. गेट के भीतर घुसते ही ताक़त का इस्तेमाल गार्ड से ही शुरू हो जाएगा जो उसे डपट देगा. होस्टल में सीनयर उसको हड़काएगा, क्लास में सबके समान और रचनात्मक होने का अहसास ख़त्म कर दिया जाएगा. इसी से मिलते-जुलते विचारों को भी लागू किया जाएगा. कैंपस को साफ़ और सुसज्जित रखने के नाम पर ब्राह्मणवाद थोपा जाएगा. कैंपस की बेपरवाही ख़त्म हो जाएगी. एक गरीब, कमज़ोर, आम इंसान को जेएनयू से मिलने वाला आत्मविश्वास ख़त्म हो जाएगा.

Downloaded from PDFmaza.com

मैंने जो दूसरी बात इनमें देखी वो ये कि ये बुनियादी तौर पर महिला, दलित, मुस्लिम, पिछड़े, आदिवासी और कमज़ोर तबकों के ख़िलाफ़ होते हैं. ये आम तौर पर होस्टल के प्रवेश द्वार के पास झुंड लगाए रहते हैं. जब भी कोई लड़की अकेले या किसी लड़के के साथ होस्टल में आती, ये सुना-सुना कर बोलते लगते कि लोगों ने जेएनयू को चरागाह बना दिया है. यहां मस्ती करते हैं. लोगों ने होस्टल को फेमिली होस्टल बना दिया है, लड़कों के शौचालय में लड़कियों को क्यों जाना चाहिए वगैरह-वगैरह. ऐसी ही चर्चाओं में एबीवीपी के लोग कहते है कि लड़कियों द्वारा शौचालय इस्तेमाल करने से ही होस्टल का पानी ख़त्म हो जाता है. अजीब बात है कि वे पानी ख़त्म होने के लिए जल बोर्ड को नहीं, लड़कियों को दोष देते.

मुनीरका में रहने वाले लोग और पढ़ने वाले लड़के साफ़ पानी लेने के लिए जेएनयू में आते हैं. हर कोई फ्रिज या आरओ नहीं रख सकता. एबीवीपी के लड़के उनकी भी शिकायत करते रहते कि उनकी वजह से हमारा पानी ख़त्म हो जाता है. 'हम' और 'वे' की मानसिकता जिनकी होती है, वे एबीवीपी के लोग होते हैं. यह मैंने महसूस किया.

मुनीरका में रहनेवाले जो छात्रों में मुझे उनमें अपना अतीत और भविष्य दिखाई देता था. कल को पीएचडी करने के बाद मुझे भी नौकरी नहीं मिलेगी. मैं उन लोगों में हूं जो 'अमरीका' नहीं जाने वाले, मुनीरका में ही रहना होगा. मोदी जी अमेरिका जा सकते हैं, लेकिन हरेक चाय बेचने वाला अमेरिका नहीं जा सकता है.

मैंने अपने भाषण में उनसे सीधा सवाल किया. मैंने कहा, तुमको यहां लड़ने की क्या ज़रूरत है? सबकुछ तुम्हारा ही है. तुम चाहो तो जेएनयू में हेलीपैड बन जाए. तुम चाहो तो जेएनयू में स्वीमिंग पूल बन जाए. तुम चाहो तो एकएक स्टूडेंट को एक रूम क्या, सरकार फ्लैट बना कर दे दे. मेरी इस बात पर लोग खूब हंसे. खूब तालियां बजीं.

वोटिंग करीब थी. लिंगदोह कमेटी की सिफारिशें लागू होने के बाद चुनाव प्रक्रिया सिमट कर दस दिनों की रह गई थी, जो पहले एक-डेढ़ महीने की हुआ करती थी. इससे प्रचार भी जल्दी ही ख़त्म हो गए.

वोटिंग के दिन मैं इतना थक गया था कि शाम होते ही मैं सोने चला गया. उस रात और अगले पूरे दिन मैं सोता रहा. आख़िर में, शाम को नींद खुली. मैं इतना घबराया हुआ था कि मैंने किसी से नतीजों के बारे में नहीं पूछा. मैं चुपचाप उस स्कूल बिल्डिंग के बाहर आकर बैठ गया जहां गिनती हो रही

Downloaded from PDFmaza.com

थी. धीरे-धीरे लोग मेरे पास आने लगे. वे मुझे गले मिलने, दिलासा देने, मेरा हौसला बढ़ाने लगे. मैं थोड़ा हैरान हुआ कि मामला क्या है. आख़िर में जाकर मैं समझ पाया कि मैं हार गया था और वे मुझे सांत्वना दे रहे थे. मेरा संगठन बुरी तरह हार गया था. हालांकि नतीजे मुझे सुखद लगे थे. छात्र संघ में जीतने वाला संगठन वामपंथी ही था. मैं वाम एकता को सिर्फ़ चुनावी एकता तक सीमित करके नहीं देखता था. मुझे लगता था कि वाम एकता का मतलब है कि ज़मीन पर वामपंथी पार्टियां एकजुट रहें.

उसी साल एसएफआई टूट गया. असल में, जेएनयू में एसएफआई की यूनिट बिखर गई. मुद्दा था राष्ट्रपति चुनाव में संप्रग-दो के उम्मीदवार प्रणब मुखर्जी को मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी (सीपीएम) द्वारा दिया गया समर्थन. एसएफआई की जेएनयू यूनिट ने इसका विरोध किया. वे मुखर्जी को नवउदारवाद के पैरोकार और बड़े कारोबारी घरानों के करीबी के रूप में देखते थे और वे इस बात को स्वीकार नहीं कर सकते थे कि सीपीएम उनका समर्थन करे.

ज़्यादातर छात्र संगठन भले ही इससे इन्कार करें कि वो राजनीतिक दलों के साथ जुड़े हुए नहीं हैं, जेएनयू में हर कोई हकीकत को जानता है. यहां छात्र संगठनों को विभिन्न राजनीतिक दलों के साथ जोड़ कर ही देखा जाता है और इसलिए उनको व्यापक राजनीतिक फैसलों के लिए जवाब देने पड़ते हैं. मिसाल के लिए जेएनयू में एसएफआई को नंदीग्राम-सिंगूर के दौरान सीपीएम के नेतृत्व वाली पश्चिम बंगाल सरकार की नीतियों की वजह से काफी सवालों का सामना पहले से ही करना पड़ रहा था. अब मुखर्जी को समर्थन के मुद्दे पर यूनिट ही अलग हो गई थी.

मैंने गौर किया था कि देश में जितनी बार भी कम्युनिस्ट पार्टियां टूटी हैं, उनके पीछे वजहें व्यक्तिगत रही हैं. उनको विचारधारा के मुद्दों की ओट में छुपा कर पेश किया जाता है. लेकिन असली वजहें दल के भीतर सत्ता की राजनीति से जुड़ी होती हैं. यह बिखराव भी इससे बहुत अलग नहीं था. वामपंथी संगठनों में, हम बार-बार लोकतंत्र की बात करते हैं, लेकिन जब फैसले लेने की बारी आती है, हम लोकतांत्रिक उसूलों को नज़रअंदाज़ कर देते हैं.

टूटी हुई यूनिट ने खुद को एसएफआई-जेएनयू कहना शुरू किया. उसी साल (2012) सितंबर में हुए अगले चुनाव में एआईएसएफ का गठबंधन इस नए संगठन के साथ हुआ. इस गठबंधन की तरफ़ से वी लेनिन कुमार

Downloaded from PDFmaza.com

यूनियन के अध्यक्ष चुने गए. इस चुनाव में यहां की राजनीति के कुछ और पहलू भी देखने को मिले, मसलन मुझे वोट शिफ्ट और ट्रांस्फर कराने की तरकीबों के बारे में पता लगा. इसमें दो या ज़्यादा संगठनों द्वारा अलग-अलग पदों के लिए अपने उम्मीदवारों के बीच में अपने कैडर के वोटों को बांट लिया जाता है. यह सहमति अघोषित होती है, लेकिन इसे अपने कैडरों और उनके कुछ विश्वस्त समर्थकों को बताया जाता है. हालांकि आख़िरकार पूरा कैंपस इसके बारे में जान जाता है.

देश में एक बड़ी उथल-पुथल चल रही थी. सत्ताधारी कांग्रेस पार्टी बड़े-बड़े घोटालों से घिर गई थी. अन्ना हज़ारे का भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन मज़बूती से फैल रहा था जबकि भाजपा और एबीवीपी का उभार भी हो रहा था.

बहुत सारे राजनीतिक दल और संगठन अन्ना हज़ारे के आंदोलन से जुड़ रहे थे. बहुत सारे वामपंथी संगठन भी इस आंदोलन में गए, इस बात पर बिना गौर किए हुए कि इसमें राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ बहुत गहराई तक घुसा हुआ है. इस आंदोलन से सीधे जुड़े सारे लोगों ने, सीधे या छुपे हुए तरीके से आरएसएस की राजनीति का समर्थन किया और कर रहे हैं. उनमें से कुछ लोग तो आगे चले कर भाजपा के नेतृत्व वाली केंद्र सरकार के दौरान मंत्री और राज्यपाल बने, मुख्यमंत्री पद के भाजपाई उम्मीदवार बने. आंदोलन के शुरुआती अग्रणी नेताओं में से एक अरविंद केजरीवाल हज़ारे से अलग हो गए, जिसके पीछे एक वजह यह भी थी.

मैं समझ सकता हूं कि आपातकाल के पहले भी यही स्थिति रही होगी. आपातकाल लागू करना ग़लत था. लेकिन उसके पहले जो आंदोलन चल रहा था, उसमें आरएसएस घुसा हुआ था. बाबा नागार्जुन की, जिन्हें आपातकाल के दौरान गिरफ़्तार करके जेल में डाल दिया गया था, कविता की एक पंक्ति है, जिसमें वो कह रहे हैं कि आंदोलन का साथ देकर उनसे बहुत बड़ी ग़लती हुई.

अन्ना हज़ारे का आंदोलन उतार-चढ़ावों से गुज़र ही रहा था कि 16 दिसंबर 2012 को दिल्ली में बलात्कार की एक घटना हुई. दिल्ली और देश की जनता इसके ख़िलाफ़ ज़ोरदार आवाज़ में विरोध जताते हुए एकजुट हुई. लोगों के मन में गुस्सा था – बलात्कार की अनेक घटनाएं होती रही थीं, लेकिन इस क्रूर हमले ने मध्यवर्ग पर सीधी चोट की थी.

उस 17 दिसंबर को मैं अपने एक परिचित के यहां था जहां मैंने इसकी ख़बर टीवी पर देखी. जेएनयू में उन दिनों सर्दियों की छुट्टियां थीं, लेकिन कुछ

Downloaded from PDFmaza.com

जेएनयू छात्रों ने पुलिस थाने के बाहर प्रदर्शन किया. धीरे-धीरे लोग जुटने लगे. बाद में, प्रदर्शनकारियों पर पुलिस ने हमले किए, जिसने लोगों को और गुस्सा दिला दिया. जेएनयू ने इन सबमें अहम भूमिका निभाई, इसने दिल्ली में हुए प्रदर्शनों में से ज़्यादातर का नेतृत्व किया और आख़िर में जस्टिस वर्मा कमेटी की मदद की, जिसने बलात्कार के कानूनों में सुधार किया.

प्रदर्शनकारियों ने सड़क जाम किया, सफदरजंग अस्पताल तक कैंडल लाइट मार्च की घोषणा की गई, जिसमें पूरे देश के लोग अपने-अपने स्थान पर जुड़े. इसके बाद जेएनयू के छात्र इंडिया गेट पर विरोध प्रदर्शन करने गए और किसी तरह वे गृह मंत्रालय में घुस गए. पुलिस अवाक रह गई. इसके बाद फिर से नॉर्थ ब्लाक पर एक बड़े प्रदर्शन का ऐलान हुआ.

उस दिन पुलिस ने लाठी चार्ज किया और प्रदर्शनकारियों को हटाने के लिए वॉटर कैनन का इस्तेमाल किया गया. लेकिन कुछ भी उनके जज़्बे को तोड़ नहीं पाया. इस बलात्कार ने पूरे राष्ट्र का ध्यान अपनी तरफ़ खींचा था, यह महज एक और घटना नहीं रह गई थी, बल्कि इसके साथ देश भर में फैल रही नाराज़गी भी आकर जुड़ गई थी.

अगले दिन फिर से लोग इंडिया गेट पर जुटे. इस बार भी दमन हुआ.

पहली बार मैं देख रहा था कि मीडिया किस तरह एक मुद्दे को उठा सकता है. अच्छी बात ये थी कि ख़ास तौर से मध्य वर्ग पहली बार सड़कों पर उतर रहा था. उसकी राजनीतिक कल्पना को पकड़ने के लिए एक नई राजनीतिक पार्टी का जन्म हुआ था. अन्ना हज़ारे के पुराने सहयोगी अरविंद केजरीवाल के नेतृत्व में आम आदमी पार्टी बनी थी. इन्हीं घटनाओं के बीच, धीरे-धीरे भाजपा का उभार होने लगा था. कांग्रेस के प्रति जो असंतोष जनता में पनपा था, उसको दिशा देने के लिए देश के स्तर पर कोई पार्टी नहीं थी. आम आदमी पार्टी ने भले ही लोगों को आकर्षित किया हो, लेकिन उसकी मौजूदगी कुछ ख़ास इलाकों तक ही सीमित थी, देश के स्तर पर वह मौजूद नहीं थी. इस खालीपन को भरते हुए और मीडिया और सोशल मीडिया का बड़े पैमाने पर इस्तेमाल करते हुए भाजपा तेज़ी से आगे बढ़ी. गुजरात के मुख्यमंत्री नरेंद्र मोदी के नाम की चर्चा भावी प्रधानमंत्री के रूप में होने लगी थी.

इस दौरान कैंपस भी एक राजनीतिक उथल-पुथल से गुज़र रहा था, कई मोर्चों पर हमले हो रहे थे. धीरे-धीरे फीस बढ़ती जा रही थी और सरकार से मिलने वाली रियायतें कम होती जा रही थीं. होस्टल में मेस के बिल बढ़ रहे

Downloaded from PDFmaza.com

थे, होस्टल के छमाही रजिस्ट्रेशन के लिए जमा होने वाली रकम कुल मिला कर बढ़ा दी गई थी. छात्रों को होस्टल की भारी कमी का सामना करना पड़ रहा था, जिसकी वजह से उन्हें बाहर किराया लेकर रहना पड़ता. स्कॉलरशिप में कोई बढ़ोतरी नहीं हो रही थी. इन सबका भार छात्रों और उनके वंचित परिवारों की आर्थिक स्थिति पर पड़ता.

दूसरी तरफ़, जनवादी अधिकारों पर हमले तेज़ हो गए थे. इसी के साथ हाशिए के लोगों और उनके अधिकारों पर होने वाले संवाद में भी इजाफा हो रहा था. एक कैंटीन में मिलने वाले बीफ को बंद करा दिया गया था. जो छात्र बीफ और सूअर का मांस खाने की बात करते, प्रशासन और संघ परिवार उन्हें निशाने पर लेता. नर्मदा होस्टल में रमज़ान के दिनों में पानी के कूलर में शराब मिला दी गई.

ये हालात थे, जब साल 2013 के चुनावों में एक बार फिर कैंपस के एक बड़े वाम संगठन आइसा ने छात्र संघ चुनाव जीते. उन्होंने होस्टलों के मुद्दे को चुनाव का मुद्दा बनाया था, लेकिन कभी भी इसके पीछे की वजहों को संबोधित नहीं किया. इसलिए समस्या जस की तस बनी रही.

2014 में आम चुनाव हुए और मई में भारी ताक़त के साथ भाजपा केंद्र की सत्ता में आई. जल्दी ही लोगों को इसका अहसास हुआ कि कांग्रेस और भाजपा में फर्क है. 16 दिसंबर के बाद लोग उतना बड़ा आंदोलन नहीं कर पाए, अब नई सरकार के दौरान आप एक छोटा-सा विरोध प्रदर्शन तक नहीं कर सकते.

यह बात ठीक उसी दिन साफ़ हो गई, जिस दिन नरेंद्र मोदी का शपथ ग्रहण होना था. 2002 में जब मोदी राज्य के मुख्य मंत्री थे, गुज़रात के मशहूर अक्षरधाम मंदिर पर एक आतंकवादी हमला हुआ था. इसके लिए छह लोग गिरफ़्तार किए गए थे. ग्यारह साल के बाद वे सभी छूट गए, क्योंकि उन पर लगाए गए आरोप फर्ज़ी थे. सर्वोच्च न्यायालय ने लापरवाही से तफ्तीश करने के लिए गुजरात पुलिस की आलोचना की. उन ग्यारह में से अनेक युवा थे और उनकी ज़िंदगी के बहुमूल्य बरस बर्बाद हो गए थे. जेएनयू के छात्र इस तरह बेगुनाहों को पकड़ कर फर्ज़ी मामलों में फंसा देने और फिर बरसों तक उन्हें जेल में रखने पर गुजरात भवन के बाहर विरोध जताना चाह रहे थे.

जेएनयू से बस निकलने से पहले ही पुलिस ने उसे अपने नियंत्रण में ले लिया. हमने पहली बार कैंपस में पुलिस देखी. पांच गाड़ियों में भर कर पुलिस कैंपस में आई थी और हमसे कहा कि हम यहां से कहीं नहीं जा

Downloaded from PDFmaza.com

सकते. लेकिन छात्रों की संख्या ज़्यादा होने की वजह से पुलिस नाकाम रही. इस पर उसने बस को ही हाइजैक कर लिया, जिसमें छात्र जा रहे थे. सफदरजंग मकबरे के पास से ही हमारा रूट मोड़ दिया गया और गुज़रात भवन नहीं पहुंचने दिया गया. हमें जंतर-मंतर ले जाकर छोड़ दिया गया.

तब जेएनयूएसयू के अध्यक्ष अकबर चौधरी थे. उन्होंने जंतर-मंतर पर जुटे हुए आक्रोशित छात्रों को सबसे पहले संबोधित करने के लिए मुझे कहा. आम तौर पर छोटा संगठन होने के कारण हमें बाद में बुलाया जाता था. लेकिन उस दिन मुझे सबसे पहले बुलाया गया. क्योंकि अकबर की नज़र में मैं ही था, जो पुलिस को समझा सकता था. मुझे उनसे उन्हीं की भाषा में अपनी बात कहनी थी. और मैंने छात्रों के उस विरोध प्रदर्शन में पुलिस वालों को संबोधित किया. आम तौर पर पुलिस ऐसे मौकों पर भाषण नहीं सुनती और न ही उस पर प्रतिक्रिया देती है. लेकिन उस दिन कई पुलिसकर्मियों ने मुझसे आकर कहा कि वे मेरी बात से सहमत थे.

उस दिन मुझे इसके संदेश मिले कि एक सांप्रदायिकता विरोधी-फासीवाद विरोधी मंच बनना चाहिए. एआईएसएफ की तरफ़ से इसकी दिशा में कोशिशें शुरू हुईं. हमने लेफ्ट-प्रोग्रेसिव फ्रंट (एलपीएफ) बनाया. इसमें डेमोक्रेटिक स्टूडेंट्स फेडरेशन (डीएसएफ, एसएफआई-जेएनयू का नया नाम), स्टूडेंट्स फॉर सोशल जस्टिस और ऐसे छात्र शामिल थे जो किसी संगठन के सदस्य नहीं थे, लेकिन इस मंच की ज़रूरत को महसूस करते थे. इसका साझा नारा था: जय भीम लाल सलाम.

यह नारा देश के दो अलग-अलग आंदोलनों की विरासतों के एक साथ आने का प्रतीक है. जय भीम का नारा एक जातिहीन समाज के लिए लड़ रहे दलित आंबेडकराइट आंदोलन से निकला है, वहीं लाल सलाम एक समतामूलक समाज का सपना देखने वाले कम्युनिस्ट आंदोलन का नारा है.

मेरे शिक्षक प्रो. तुलसीराम कहते थे कि सत्ता के ख़िलाफ़ और बराबरी के लिए लड़ने वाला कोई भी आंदोलन – चाहे वो नारीवादी हो, पर्यावरणवादी, दलित, मज़दूर, किसान आंदोलन हो - अलगाव में ज़िंदा नहीं रहेगा. उसे साथ आना ही पड़ेगा. इसीलिए जय भीम लाल सलाम एक साथ आए.

यहां से जेएनयू में एक नई राजनीति की शुरुआत हुई. सबने एकजुट होने की ज़रूरत महसूस की. लेकिन 2014 के चुनावों में एलपीएफ का कोई उम्मीदवार सेंट्रल पैनल में नहीं जीत सका. लेकिन चिंताजनक बात ये थी

Downloaded from PDFmaza.com

कि एबीवीपी का वोट शेयर और काउंसिलरों की संख्या इस बार बढ़ गई थी.

तभी पूर्वी दिल्ली के त्रिलोकपुरी इलाके में सांप्रदायिक हमले हुए.

देश में जहां कहीं भी कुछ होता है, कोई जुल्म, कोई दमन, कोई संघर्ष, जेएनयू के छात्र ऐसे हालात में अपनी भूमिका को समझते हैं और उचित कदम उठाते हैं. समस्याओं से जूझ रहे और संघर्ष कर रहे लोग भी जेएनयू की तरफ़ उम्मीद से देखते हैं. यहां तक कि छोटी घटनाओं में भी जेएनयू के छात्रों से मदद मांगी जाती है. जैसे जेएनयू के गेट के सामने एक चायवाले की दुकान है. उसका लड़का लापता हो गया. वह मदद के लिए जेएनयू के छात्रों के पास आया. आसपास में कहीं कोई घटना होती है, तो वे उसके समाधान के लिए जेएनयू की तरफ़ देखते हैं. पास में वसंत कुंज झोंपड़पट्टी की एक लड़की गायब हो गई थी. वहां के निवासी मदद मांगने जेएनयू छात्रों के पास आए थे. इसके पहले म्यांमार में सांप्रदायिक हमलों की वजह से विस्थापित हुए शरणार्थी रोहिंग्या मुसलमानों के पुनर्वास के लिए जेएनयू छात्रों ने संघर्ष किया था.

त्रिलोकपुरी की घटना के बाद एबीवीपी को छोड़ कर सभी संगठनों के छात्र इस इलाके में एक फैक्ट फाइंडिंग के लिए गए. त्रिलोकपुरी एक उपेक्षित सा इलाका है और गरीबों-मज़दूरों के हर इलाके की तरह, वहां पहुंचना भी बहुत मुश्किल था.

हम जब पहुंचे, हमने वहां देखा कि हमलों के दौरान ईंटों का जो पथराव हुआ था, उन्होंने सड़क पर अपने निशान छोड़ दिए थे, जो लाल हो गई थी. मुस्लिम बस्ती में दुकानें जला दी गई थीं और जला हुआ सामान बिखरा हुआ था: जले हुए कपड़ों की राख, जला हुआ काउंटर, स्टील का काला पड़ा फ्रेम. मुसलमानों का कहना था कि यह उन्मादी भीड़ का हमला नहीं था. यह पूरी तरह योजना बना कर किया गया था, जिसमें मुसलमानों को आतंकित करना और उन्हें आर्थिक रूप से तबाह कर देने की कोशिश की गई.

हम फिर वाल्मीकि मुहल्ले में गए. शुरू-शुरू में हमें कुछ लोग मिले जिन्होंने बताया कि अपनी दुकानों में आग मुसलमानों ने खुद लगाई थी, ताकि वे बीमे का पैसा हड़प सकें. लेकिन उसी मुहल्ले में दूसरे अनेक दलित भी मिले, जिन्होंने यह कबूल किया कि इस हमले में संघ परिवार की योजना काम कर

Downloaded from PDFmaza.com

रही थी. उन्होंने मुहल्ले में चलने वाले एक स्कूल की ओर इशारा किया, जिसे संघ परिवार चलाता है.

जैसा मैंने नेहरू विहार में देखा था, यहां भी समुदायों के बीच में तनाव होते थे, यहां की अपनी अंदरूनी राजनीति और झगड़े थे. लेकिन इस बार एक आम झगड़े को एक सांप्रदायिक रंग दे दिया गया था. हरेक अनुभव के साथ मेरी यह राय पुख्ता होती गई कि अगर सताए हुए और गरीब लोगों की, एकता नहीं हुई, तो ये सरकार उनको आपस में ही लड़ा कर ख़त्म कर देगी. कमज़ोर तबकों का एक साथ आना ज़रूरी है.

लेकिन जेएनयू में भी हमारा वह प्रयोग जारी नहीं रह सका. 2015 में जब फिर से वामपंथी प्रगतिशील मोर्चा बनाने का प्रस्ताव रखा गया तो दूसरे संगठनों ने उसे नकार दिया. नतीजा ये हुआ कि सारे वाम और आंबेडकराइट संगठनों के उम्मीदवार मैदान में खड़े थे. इस बिखराव की वजह से वोट बंटे और एबीवीपी को सेंट्रल पैनल में एक सीट मिल गई.

लेकिन निजी तौर पर एक सुखद घटना घटी. इस चुनाव में मैंने एआईएसएफ की तरफ़ से अध्यक्ष पद के लिए चुनाव लड़ने का फैसला किया था. मैंने अब तक अनेक आंदोलनों में हिस्सा लिया था और अब मेरे विचार भी मज़बूत हुए थे और खुद पर मेरा भरोसा भी. अब मैं एक बड़ी भूमिका के लिए खुद को तैयार पाता था. इस बार चुनाव प्रचार पहले से बहुत अलग था. अब यह कम तनावपूर्ण था. लोग अब मुझे जानते थे और उनका वोट मांगने में भी कोई झिझक नहीं होती. प्रचार के आख़िरी दिन प्रेसिडेंशियल डिबेट हुई. हमेशा की तरह मैंने किसी किताब से तैयारी नहीं की. न ही मैं घबराया हुआ था. मेरे पास जेएनयू के चार साल के एक्टिविज़्म की जमापूंजी थी और मैं दस मिनटों में अपने विचारों के निचोड़ को अनेक मुद्दों के साथ जोड़ते हुए, उनको एक संदर्भ में पेश करने में कामयाब रहा.

राजनीति में भाषण बहुत ज़रूरी होते हैं. यही वो अकेला ज़रिया होता है जब आप जनता से संवाद करते हैं, क्योंकि राजनेता तो जनता के ही नेता होते हैं. आपको उन्हें समझाना होता है कि समस्या क्या है और उसका समाधान क्या है. जनता को यह बात आप अपने भाषणों के ज़रिए ही बता पाते हैं. इसलिए भाषणों में ईमानदारी ज़रूरी होती है, हो सकता है कि आप मन की बात खूब करें, लेकिन ज़रूरी नहीं कि वह ईमान की बात भी हो. ईमान की बात वही होती है, जो जनता के हक में होती है. उसको भुलावा देने के लिए नहीं.

Downloaded from PDFmaza.com

जेएनयू के प्रेसिडेंशियल डिबेट में सैकड़ों और कई बार हज़ारों छात्र आते हैं. इसका बहुत बड़ा असर चुनाव के नतीजों पर पड़ता है. आपको न सिर्फ़ अपना स्टैंड रखना होता है, बल्कि आपको अपने प्रतिद्वंद्वियों और आम छात्रों के सवालों का सीधे जवाब भी देना होता है. बहस उम्मीदवारों की तैयारी, उनकी राजनीतिक समझ और उनकी लोकप्रियता को दिखाती है.

मेरी सबसे बड़ी चिंताओं में एक यह थी कि उच्च शिक्षा का तेज़ी से निजीकरण हो रहा था. इसी के साथ छात्र संघों पर लिंगदोह कमेटी की सिफारिशें थोप कर उन्हें नकारा बनाने की कोशिश की गई. मैंने लिंगदोह कमेटी की सिफारिशों के ख़िलाफ़ बोलते हुए अपना भाषण शुरू करने का फैसला किया, जिसके बारे में आइसा के नेतृत्व वाले अनेक यूनियनों ने अब तक कुछ भी नहीं किया था. मैंने छात्रों से अपील की कि वे वोटिंग के दिन लिंगदोह कमेटी की सिफारिशों को खारिज करने के लिए वोट करें. मेरा वादा था कि अगर मैं जीत पाया तो अगला चुनाव जेएनयूएसयू संविधान के तहत कराऊंगा.

मैंने अपने राजनीतिक विज़न को वहां दोहराया. बढ़ते फासीवादी हमलों के दौर में वामपंथी एकता ज़रूरी थी. बिहार में चुनाव होने वाले थे और वहां वामपंथी पार्टियां मिल कर चुनाव लड़ रही थीं, लेकिन जेएनयू में आइसा ने दूसरे वाम संगठनों के साथ मिल कर चुनाव लड़ने से मना कर दिया था. मैंने कहा कि आइसा भले ही इस एकता की ज़रूरत को न समझे, देश की जनता सड़कों पर साथ आएगी और इस एकता को कायम करेगी.

मैंने एबीवीपी और आरएसएस पर निशाना साधा. एक मुसलमान उम्मीदवार से ही कुरआन का ग़लत हवाला देकर नफ़रत फैलाने वाला भाषण दिलवाया गया था. मैंने कड़े शब्दों में निंदा की. मैंने कहा, जिस तरह छप्पन इंच का सीना नकली है, उसी तरह तुम्हारा जुलूस नकली है, तुम्हारी राजनीति नकली है. मैंने शासक वर्ग की पार्टियों और उनकी छात्र राजनीति के बारे में दो और बातें कहीं. मैंने कहा कि वे राजनीति में सिर्फ़ अपना कैरियर बनाने के लिए आते हैं. समाज को बदलना, समाज में कमज़ोर की आवाज़ के लिए एक व्यवस्था स्थापित करने से उनका कोई लेना देना नहीं है. उनका मकसद यही होता है कि उन संगठनों से चुनाव जीतने के बाद कम से कम कोई नौकरी हासिल हो जाएगी या फिर अधिक से अधिक वे कैबिनेट मंत्री बन जाएंगे. छात्र संघ, कैबिनेट में जाने की उनकी सीढ़ी होता है. अगर किसी छात्र संगठन की कथनी और करनी में फर्क है तो वो कभी भी जनता का विश्वास नहीं जीत सकता, मैंने कहा. सवाल-जवाब के सत्र में

Downloaded from PDFmaza.com

एबीवीपी के उम्मीदवार को जवाब नहीं सूझ पाया और वो पहले बोलते हुए लड़खड़ाया और फिर चुप हो गया.

उस रात प्रेसिडेंशियल डिबेट में मेरे भाषण को लोगों ने काफी पसंद किया था. छात्र संगठनों से ऊपर उठकर छात्रों ने मेरा हौसला बढ़ाया था. लोग गर्मजोशी से मुझसे मिले. अब लोगों के हाथ मिलाने के अंदाज़ से मुझे कैंपस के बदले हुए मूड का अंदाज़ा लगने लगा था.

लेकिन मैं तब भी कल्पना नहीं कर पाया था कि मैं चुनाव जीत जाऊंगा. यह शायद पहला ही मौका होगा, जब एआईएसएफ अकेले चुनाव लड़ा और जीता. चुनाव के तीसरे दिन नतीजे घोषित होने थे. तीन दिनों और रातों से मैं सोया नहीं था. लेकिन जब नतीजे आए, मैंने अपने भीतर एक अपार उर्जा महसूस की. मैं किसी और बात पर सोच नहीं पा रहा था. मुझे अपने कंधों पर एक भारी ज़िम्मेदारी का अहसास भी हुआ. जेएनयू के छात्रों ने एक मुश्किल वक़्त में बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी मुझे दी थी. और मुझे उनके भरोसे पर खरा उतरना था.

एक साल में भाजपा सरकार ने देश भर में विश्वविद्यालयों और संस्थानों में चिंताजनक नियुक्तियां की थीं ताकि इन संगठनों पर कब्ज़ा किया जा सके. इनमें से अनेक लोगों के पास सचमुच की योग्यता नहीं थी, सिवाय आरएसएस से अपनी नज़दीकी के और उन्हें अकादमिक और छात्र समुदाय में न स्वीकृति थी और न ही सम्मान. इसकी शुरुआत फिल्म एंड टेलिविज़न इंस्टीट्यूट ऑफ इंडिया (एफटीआईआई), पुणे से हुई, जहां एक ऐसे शख़्स को इसका अध्यक्ष बना दिया गया, जिसकी अकेली काबिलियत यही थी कि वो वैचारिक रूप से मोदी का करीबी है. एफटीआईआई के छात्रों ने इसका विरोध शुरू किया.

अगली नियुक्ति भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद (आईसीएचआर) में हुई जहां अनेक सदस्यों ने विरोध में इस्तीफा दे दिया. फिर प्रतिष्ठित भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों (आईआईटी) की बारी थी. ऐसी परिस्थितियां बनाई गईं कि इनके प्रमुख या तो सरकार के सामने झुक जाएं या फिर इस्तीफा देकर चले जाएं. जून 2015 में आईआईटी-मद्रास में आंबेडकर पेरियार स्टडी सर्किल (एपीएससी) की गतिविधियों पर रोक लगाई गई थी. उसके कार्यकर्ता आंदोलनरत थे. उनके साथ एफटीआईआई का आंदोलन जुड़ गया.

Downloaded from PDFmaza.com

मैं जिस एकता की बात पिछले एक साल से कर रहा था, बदले हुए हालात में वह एकता अपने आप ही उभर आई थी. इसलिए चुनाव जीतने के बाद मैंने रात में विजय जुलूस नहीं निकाला, जैसी की परंपरा रही थी. मैंने कहा कि मैं यूनिटी मार्च निकालूंगा और शपथ लेते हुए मैंने एबीवीपी को छोड़ कर सभी संगठनों के झंडे उठाए.

वह एक शानदार जुलूस था. डेढ़ हज़ार से ज़्यादा छात्रों ने उसमें हिस्सा लिया, जिसमें वामपंथी और आंबेडकराइट संगठनों के लोग शामिल थे. कैंपस में हमारी आवाज़ें थीं और हमारी आंखों में उर्जा. अहम बात यह थी कि इस जीत को सिर्फ़ एआईएसएफ की जीत न बता कर पूरे वामपंथ और समतामूलक संगठनों की जीत बताना लोगों के दिल को छू गया था. सरकार नौजवानों के लिए दो करोड़ नौकरियां देने और शिक्षा व्यवस्था को सुधारने का वादा करके सत्ता में आई थी. लेकिन यह शिक्षा पर दोहरे हमले कर रही थी. एक तरफ़ तो पूरे देश में विभिन्न विश्वविद्यालयों पर कब्ज़े की कोशिश चल रही थी. और फिर उनकी निगाह पढ़ाई के लिए मिलने वाली स्कॉलरशिप पर थी. मामले को देखने के लिए स्कॉलरशिप एनहान्समेंट कमेटी बनी. उसने नॉन नेट स्कॉलरशिप ख़त्म करने की सिफारिश की, जो विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) द्वारा केंद्रीय विश्वविद्यालयों के शोध छात्रों को दी जाने वाली स्कॉलरशिप है.

जेएनयू ने फौरन इस फैसले पर प्रतिक्रिया दिखाई. हमारा कहना था कि फेलोशिप दलितों, पिछड़ों, महिलाओं, अल्पसंख्यकों और गरीबों का सवाल है. अगर फेलोशिप बंद होगी तो उनकी पढ़ाई बंद नहीं होगी, जिनके मां-बाप पांच लाख रुपए कमाते हैं. उसकी पढ़ाई बंद होगी जिनके मां-बाप पांच हज़ार रुपए कमाते हैं. इस देश में गरीब कौन है? आप देख लीजिए: दलित, पिछड़े, मुसलमान, आदिवासी. अगर इन्हें आरक्षण कहीं मिला है तो गरीबी में मिला है. इसलिए हम कह रहे थे कि फेलोशिप का सवाल सामाजिक न्याय का सवाल है. एक ऐसे समाज में, जहां पंद्रह वर्ष या उससे कम उम्र में ही लड़कियों की शादी कर दी जाती है, वहां अगर फेलोशिप नहीं रहे तो क्या लड़कियां पढ़ाई कर पाएंगी? यह फेलोशिप क्यों बंद की गई? क्योंकि सरकार शिक्षा का निजीकरण करना चाहती है. नवउदारवाद इसी तरह काम करता है. हमने देखा है कि किस तरह जिन सरकारी क्षेत्रों में रोज़गार मिल रहा है, उनका निजीकरण करके आरक्षण को ख़त्म किया जा रहा है. एक तरफ़ आरक्षण के नाम पर राजनीति भी कर रहे हैं और चुनाव जीतने के बाद आरक्षण को ख़त्म भी कर रहे हैं. शिक्षा में आरक्षण को

Downloaded from PDFmaza.com

नाकाम करने की साजिश के तहत फेलोशिप रोक कर इसका निजीकरण किया जा रहा है.

नई दिल्ली स्थित विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) के कार्यालय के सामने एक विरोध प्रदर्शन किया गया. पहली बार मैंने जेएनयू के लोगों को उग्र होते देखा. यूजीसी के मुख्य द्वार को तोड़ते हुए उन्होंने यूजीसी के परिसर में अपना डेरा जमा दिया. इस संघर्ष ने एक नए शब्द को जन्म दिया: ऑक्युपाई यूजीसी. यह संयुक्त राज्य अमेरिका में चले ऑक्युपाई वॉल स्ट्रीट से प्रेरणा लेकर बना था. आंदोलन जब शुरू हुआ, तो बिल्कुल ही इसका अहसास नहीं था कि यह आंदोलन इतना बड़ा हो जाएगा. यह धीरे-धीरे एक देशव्यापी आंदोलन में तब्दील हो गया और पूरे देश में इसने छात्रों के बीच एक व्यापक एकता बनाई.

स्मृति ईरानी मानव संसाधन विकास मंत्री थीं, जिनके तहत शिक्षा का मामला आता है. बस एक बार वो हम आंदोलनकारियों से मिलीं. देश भर से आए पांच हज़ार से ज़्यादा छात्रों का एक जुलूस उनके दफ्तर तक पहुंचा था. पुलिस ने उन्हें रोकने की बहुत कोशिश की, लेकिन जनता जब खुद पर आती है तो पुलिस की कोई ताक़त उन्हें नहीं रोक पाती.

मंत्री जी को सड़क पर आना पड़ा. पहले तो हमें बड़ी हैरानी हुई कि वो आईं. बाद में समझ में आया कि वो इसलिए आई थीं कि सड़क पर मीडिया बहुत था. इसके बावजूद मैं उनकी तारीफ करूंगा क्योंकि इस सरकार में किसी भी मंत्री में इतना साहस नहीं है कि वो सड़क पर आकर जनता से बात करे. हालांकि इस मेल-जोल का कोई फायदा नहीं था. क्योंकि उनके लिए कैमरे की चकाचौंध ही अहमियत रखती है. एक गरीब इंसान के जीवन में रोशनी आ जाए, उससे उनको कोई लेना देना नहीं है. अगर ऐसा होता तो वो कैमरे की चकाचौंध के बिना भी मिलतीं और समस्याओं को हल करतीं. एक बार वो जेएनयू भी आई थीं, लेकिन चुपचाप आईं और जेएनयू छात्र संघ भवन की कैंटीन को बस एक एक्जॉस्ट फैन देकर चली गईं. यह फैन सिर्फ़ हवा एक्ज़ॉस्ट नहीं करता, यह शायद हमारे जीवन की संभावनाओं को एक्ज़ॉस्ट करने के लिए था. उनके साथ छात्रों के संबंध धीरे-धीरे बिगड़ते चले गए और जनवरी 2016 में रोहित वेमुला की खुदकुशी के बाद तो ये टूट ही गए.

ऑक्यूपाई यूजीसी रचनात्मक और कलात्मक विरोध का एक स्पेस बन गया. विरोध स्थल पर गीत, नाटक और कविताएं पेश की जातीं. जेएनयू और दूसरे संस्थानों के शिक्षकों ने वहां पब्लिक क्लासेज़ लेने की पहल की.

Downloaded from PDFmaza.com

सर्दी के पूरे मौसम में छात्रों ने यूजीसी के सामने चौबीसों घंटे धरना जारी रखा. भाजपा के सत्ता में आने के बाद से पुलिस भी हमारे ख़िलाफ़ ज़्यादा आक्रामक हो गई थी. छात्रों से थोड़ी सी बहस होते ही लाठी चार्ज कर देती. ऑक्युपाई यूजीसी के दौरान कई बार तीखे लाठी चार्ज हुए, लोगों के सिर फूटे. दर्जन भर से अधिक छात्र हॉस्पीटलों में भर्ती हुए.

सबसे दुखद बात थी कि महिला छात्रों को पुरुष पुलिसवाले पीटते और बुरी तरह पीटते. दमन की इन्तहा थी. जेएनयू में छात्र अपने सवालों को लेकर लड़ते हैं, लेकिन पुलिस और सरकार के ख़िलाफ़ उनकी कोई साजिश नहीं होती है. उनका सत्ता से बस एक सहज-सा सवाल होता है कि आप हमारा हक क्यों छीन रहे हैं. लेकिन पुलिस और सरकार उनके साथ दुश्मन की तरह बरताव करती है. उनको ऐसा लगता है कि ये छात्र देश में रहने वाले नागरिक नहीं, सीमा पर खड़े दुश्मन हैं. अजीब विडंबना है. आप वसुधैव कुटुंबकम की बात करते हैं. दुनिया को परिवार बताते हैं. दूसरी तरफ़ अपने ही देश के नौजवानों की इस तरह पिटाई करते हैं.

यूजीसी आंदोलन के दौरान हमने एकता की अनोखी संभावनाएं देखीं. विद्यार्थियों को एकजुट करना आसान नहीं होता. यह एक ऐसा दौर होता है, जब हरेक की अपनी दुनिया होती है. हर कोई अपने तरीके से इस दुनिया को देखता है. बाहर की दुनिया बहुत मायने नहीं रखती. लेकिन हमला इतना बड़ा था कि सारे छात्रों में इस बात को लेकर सहमति बनने लगी थी कि यह सरकार बुनियादी तौर पर शिक्षा, संविधान और लोकतंत्र के ख़िलाफ़ है.

इस बात ने छात्रों को एकजुट होने में मदद की. अलग-अलग विचारधाराओं के लोग और संगठन सड़क के किनारे एकजुट हुए.

तिरपाल लगाकर सोना, आग जला कर सर्दी से मुकाबला करना, नारे लगाना, गीत गाना – ये उस आंदोलन के अलग-अलग अनुभव थे.

दशहरे का दिन था. देश के कई हिस्सों में रावण का पुतला जलाया जा रहा था. मोदी जी भी रावण का पुतला जलाने के लिए जा रहे थे. उन्हें उसी रास्ते से होकर लाल किला जाना था, जिस पर यूजीसी कार्यालय है. कितना अजीब था कि आज के समय के लिए जो बुराई का प्रतीक है, वो बुराई का प्रतीक बताए जाने वाले एक दूसरे पुतले को जलाने जा रहा है.

पुलिस की भारी तैनाती थी. हमने उस दौरान देखा कि सत्ता में बैठे लोग कितना डरते हैं. हम पढ़ने वाले मुट्ठी भर छात्र थे, हम सौ से ज़्यादा नहीं रहे

Downloaded from PDFmaza.com

होंगे. लेकिन वहां पुलिस की भारी तैनाती थी. शायद उन्हें लग रहा था कि हम उन्हें पत्थर मारने के लिए खड़े हैं.

हमारे मन में खयाल आया कि हमें भी पुतला जलाना चाहिए. तय हुआ कि जूट के थैलों और पुराने कपड़ों से केंद्र सरकार का पुतला बना कर जलाया जाए. पुतले को यूजीसी कार्यालय पर पहुंचाना सबसे बड़ी चुनौती थी. हमें उसे इस तरह छुपा कर लाना पड़ा, जैसे कोई मिसाइल हो. पुलिस के साथ आंख-मिचौली खेलते हुए, साथियों ने बड़ी मशक्कत के बाद उसे यूजीसी कार्यालय के सामने पहुंचा दिया. हमने उसे जलाया. उस दिन हमने यह सबक सीखा कि सत्ता चाहे कितनी भी ताक़तवर हो, लोग संगठित हों तो कोई भी संघर्ष जीता जा सकता है. पुतला जल रहा था और हम उसमें आंदोलन की आग देख रहे थे.

उसी रात, तड़के पुलिस ने हमला किया. हम करीब 90-95 लोग वहां थे. पुलिस कम से कम 300 की तादाद में आई. हमने यूजीसी को ऑक्युपाई कर रखा था. वो हमें ऑक्युपाई करने आ गए. पुलिस ने हमें बसों में भर कर भलस्वा थाने में छोड़ दिया. वहां का अफसर बड़ा अच्छा आदमी था. वो खुश हो गया कि उसके थाने में पहली बार अपराधी नहीं, पढ़ने-लिखने वाले बच्चे आए थे. उसने ऐसा स्वागत किया कि उसके पास कोई बरात आई हो.

अब तक हमें जब भी हिरासत में लिया जाता, संसद मार्ग या चाणक्यपुरी थाने में रखा जाता था. संसद मार्ग में इसलिए कि हम संसद या जंतर-मंतर पर प्रदर्शन करने जाते. और चाणक्यपुरी इसलिए कि हम दूतावासों के सामने प्रदर्शन करने जाते. ऐसे प्रदर्शनों के दौरान मैं पटना में भी हिरासत में लिया गया था. पटना और दिल्ली पुलिस में एक फर्क है. दिल्ली की पुलिस चाय-समोसे खिलाती है. पटना में आपको गाली खाने को मिलती है.

सिर्फ़ थाने की पुलिस की बात ही नहीं थी. यूजीसी पर तैनात पुलिसकर्मी भी, जो शुरू में हमारे बहुत ख़िलाफ़ थे, अब धीरे-धीरे नरम पड़ने लगे थे. हम सड़क किनारे सर्दियों में ठिठुरते हुए बैठे रहते. पुलिस के जवान सूखी लकड़ियां लाकर हमें देते, ताकि हम उन्हें जला कर आग ताप सकें. लेकिन वे हमें सीधे लकड़ी नहीं देते. वे उन्हें चुपचाप लाकर हमारे पास रख देते.

सिर्फ़ पुलिस के साथ ही अनोखा अनुभव नहीं हुआ. आंदोलन को ख़त्म करने का आज़माया हुआ तरीका है कि उसकी सप्लाई को रोक दिया जाए. ऑक्युपाई यूजीसी के दौरान परिसर के भीतर का बाथरूम हमारे लिए बंद

Downloaded from PDFmaza.com

कर दिया गया. बिजली भी काट दी गई. लड़कियां इस आंदोलन की ताक़त थीं, बल्कि उनकी तादाद लड़कों से ज़्यादा थी. उनको समस्या होने लगी.

सार्वजनिक जीवन और राजनीति में आने वाली लड़कियों के लिए यह कितनी बड़ी रुकावट है. प्रदर्शनों और जुलूसों में जाना उनके लिए कितना मुश्किल है कि बाथरूम जाने की एक प्राकृतिक ज़रूरत को वे पूरा नहीं कर सकती हैं. बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ का नारा देने वाली सरकार ने उनके लिए फेलोशिप तो बंद कर ही दी थी, अब जब वे आंदोलन में उतरीं तो उनके लिए बाथरूम भी बंद कर दिया. विडंबना देखिए कि यही सरकार 'बहू-बेटियों' के लिए शौचालय बनवाने के लिए विज्ञापन पर लाखों-करोड़ों रुपए खर्च कर रही है.

यूजीसी की इमारत के ठीक बाहर एक मंदिर और एक मस्जिद है. आंदोलनरत छात्राओं और छात्रों ने पहले मंदिर के बाथरूम का इस्तेमाल करने की कोशिश की. लोगों के दिमाग में था कि शायद मस्जिद में महिलाओं का दाखिल होना मुश्किल होगा. लेकिन उनको साफ़ मना कर दिया गया. कोई और विकल्प न देख कर हमने मस्जिद में कोशिश की. मस्जिद वालों ने चौबीसों घंटे अपने दरवाज़े हमारे लिए खोल दिए.

ऑक्युपाई यूजीसी के दौरान वह मस्जिद आंदोलन की जीवन रेखा बनी रही. वह उस आंदोलन के भागीदार के तौर पर खड़ी हुई. इसका नतीजा मस्जिद और उसमें रहने वालों को यह भुगतना पड़ा कि एक रात तीन बजे के करीब पुलिस ने मस्जिद में छापा मारा, वहां तलाशी ली और उसमें मौजूद लोगों को परेशान किया. इन मुश्किलों के बावजूद उन्होंने हमारी मदद जारी रखी. उन्हें रोकने के लिए पुलिस ने वहां चल रहे मरम्मत के काम को बंद करा देने की धमकी तक का सहारा लिया. लेकिन वो मज़बूती से हमारे साथ खड़े रहे.

ऑक्युपाई यूजीसी आंदोलन के दौरान मैं तीन राज्यों में गया: बिहार, झारखंड, पश्चिम बंगाल. उम्मीद के मुताबिक बिहार में केंद्र सरकार के ख़िलाफ़ एक गुस्सा था, और वहां से बहुत सकारात्मक प्रतिक्रिया मिली. लेकिन झारखंड में दिक्कत हुई, जहां रांची विश्वविद्यालय और दूसरी जगहों पर कार्यक्रम को डिस्टर्ब करने की एबीवीपी ने कोशिश की.

यह कोई नई बात नहीं थी. यूजीसी आंदोलन के दौरान ही हम देख चुके थे कि डीयू छात्र संघ के अध्यक्ष ने, जो एबीवीपी से है, बाकायदा एक रात यूजीसी परिसर में हमपर पत्थर फेंके थे. रांची विवि में वो कार्यक्रम को

Downloaded from PDFmaza.com

रोकने आए थे, लेकिन वहां जमा छात्रों की भीड़ की वजह से कुछ कर नहीं पाए. बिहार और पश्चिम बंगाल में वे हमारे कार्यक्रमों पर हमला करने की हिम्मत नहीं जुटा पाए. इनको हम छात्र संगठन कैसे कह सकते हैं! पत्थर फेंकना, जूते फेंकना, गाली देना, मारपीट करना इनकी फितरत है.

मैं अनगिनत छात्रों और शिक्षकों से मिला. मैंने देखा कि सिर्फ़ जेएनयू ही नहीं है, जो होस्टल की समस्या से जूझ रहा है. बल्कि यहां तो हालात थोड़े बेहतर इस मायने में हैं कि यहां कुछ होस्टल हैं भी. कई ऐसे विश्वविद्यालय हैं जहां होस्टल हैं ही नहीं. हमारे बगल में ही, इसी शहर में डीयू है, जहां बरसों से एबीवीपी जीतता रहा है. वहां पर महज कुछ हज़ार विद्यार्थियों के लिए होस्टल है, जबकि वहां कुल छात्रों की संख्या लाखों में है.

इसी तरह फेलोशिप का सवाल था. जेएनयू में कम से कम सारे छात्रों को नॉन-नेट फेलोशिप मिलती है. बहुत सारे विवि और कॉलेज ऐसे हैं, जहां छात्रों को यह फेलोशिप भी नहीं मिलती है. यहां कम से कम एक लाइब्रेरी है, कई जगहों पर कोई लाइब्रेरी नहीं है.

इन दौरों से लौटते हुए मेरा यह विचार पुख्ता हो गया था कि इन सबके लिए एकजुट होकर लड़ने की ज़रूरत है.

इस सरकार से छात्रों के टकराव की लंबी कड़ी में ऑक्युपाई यूजीसी आंदोलन मील का पत्थर था. इसमें छात्र और केंद्रीय मंत्रालय सीधे-सीधे आमने सामने थे. यह आंदोलन पूरे देश में खड़ा हो रहा था, इसमें संभावनाएं थीं.

इसकी कामयाबी की वजहों में से एक यह थी कि भले ही जेएनयू ने इस आंदोलन को शुरू किया था, लेकिन हम अनेक विश्वविद्यालयों को एक साथ ला पाए और इसे पक्का किया कि कोई भी एक नेता या संगठन के पास सारी ताक़त नहीं होगी. जेएनयू एक रीढ़ का काम कर रहा था, लेकिन हमने इसकी कामयाबी का श्रेय नहीं लिया. एक लोकतांत्रिक समिति थी जो फैसले लेती और उसे लागू करती. एक राजनीतिक कार्यकर्ता के लिए ये एक रोमांचक दौर था. एक ऐसा वक़्त जब आपको लोगों को जुटाना नहीं होता. जब लोग खुद आते हैं और आपको अपनी लहर में खींच कर ले जाते हैं. पढ़ाई जेहन से उतर गई. जीवन की निजी ज़रूरतें अब अहम नहीं लग रही थीं. सर्दियों के मौसम में रात-रात भर हम बैठकें करते और अपने अगले कदम का फैसला करते. हम सब बहसें करते, एक दूसरे की आलोचना करते, कई बार सहमत होते और आख़िर में एक नतीजे पर पहुंचते. नई

Downloaded from PDFmaza.com

पहचानें बन रही थीं, पुरानी पहचानें पुख्ता हो रही थीं. हम सभी राजनीतिक रूप से असहमत होते हुए भी साथ काम करना सीख रहे थे.

सरकार इसे दिल्ली में ख़त्म नहीं कर पाई. इसलिए दूसरी जगहों पर छात्रों को निशाना बनाने लगी. हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय में छात्रों पर कार्रवाई इसी का नतीजा था. आरक्षण भारतीय विश्वविद्यालयों में एक व्यापक विविधता लेकर आए हैं और ये छात्र क्लासरूम में अपने सरोकार उठाने लगे हैं. मिसाल के लिए इतिहास पढ़ने वाले आदिवासी छात्र जानना चाहते हैं कि उनका इतिहास क्यों नहीं पढ़ाया जा रहा है. दलित और पिछड़े वर्गों के छात्र कहते हैं कि जाति का ढांचा ब्रिटिश लोगों ने नहीं बनाया – यह हज़ारों बरसों से हमारी संस्कृति का हिस्सा है. गांधी और मार्क्स के अलावा, अब नौजवान आंबेडकर को पढ़ने लगे हैं.

इसकी एक मिसाल हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय (एचसीयू) में देखने को मिली, जहां एबीवीपी को हराने के लिए वामपंथी एसएफआई और आंबेडकराइट आंबेडकर स्टूडेंट्स असोसिएशन (एएसए) साथ आए थे. जब मुज़फ्फरनगर हमलों पर बनी डॉक्युमेंटरी मुज़फ्फरनगर बाक़ी है की दिल्ली विश्वविद्यालय में स्क्रीनिंग हुई, एबीवीपी ने उस पर हमला किया. इसके विरोध में जब देश भर में इस फिल्म की स्क्रीनिंग हुई, तो उन्होंने एएसए के एक नौजवान दलित कार्यकर्ता रोहित वेमुला और उनके साथियों को निशाना बनाया, जो वहां फिल्म की स्क्रीनिंग से जुड़े थे. उनके ख़िलाफ़ जांच का एक लंबा सिलसिला चला जिसमें केंद्रीय मंत्रालय से लेकर विवि प्रशासन तक सब एकजुट थे. पांच छात्रों पर पाबंदी लगा दी गई, जिसमें रोहित वेमुला भी शामिल थे.

जेएनयू में छात्र गुस्से में थे और हैदराबाद के छात्रों के साथ एकजुटता ज़ाहिर करते हुए छात्र धरने पर बैठे और 18 जनवरी को मानव संसाधन विकास मंत्रालय के सामने विरोध प्रदर्शन करने का फैसला किया. लेकिन 17 जनवरी की शाम को रोहित वेमुला की खुदकुशी की ख़बर आई. अपने सुसाइड नोट में उन्होंने कहा था: 'एक आदमी की कीमत उसकी फौरी पहचान में समेट दी गई है. एक वोट में. एक संख्या में. आदमी को कभी भी इस तरह नहीं लिया जाता कि वह सोचता भी है. कि वह सितारों से बनी हुई एक चमकदार चीज़ है.'

हमारा प्रदर्शन अब एक आंदोलन बन गया. जस्टिस फॉर रोहित वेमुला के लिए लोग भारी संख्या में जुटे. यह एक देशव्यापी आंदोलन के रूप में फैल

Downloaded from PDFmaza.com

गया. हमें व्यापक समर्थन मिल रहा था – काफी कुछ ऊपर से दिख भी नहीं रहा था. एक ब्रेड पकौड़े के खोमचे वाले ने आंदोलनकारियों को ब्रेड पकौड़े खिलाए. पुलिस और संघी गुंडों की मार-पीट से चोटिल साथियों का इलाज पास के ही एक डॉक्टर ने मुफ्त में किया.

अगर एक आंदोलन जनता की कल्पना को छूता है और उसकी तकलीफों को सही तरीके से और समय पर उठाता है तो यह एक बड़ा आंदोलन बन जाता है. पहले बड़े आंदोलन अक्सर एक मज़बूत नेतृत्व के तहत ऊपर से शुरू होते. अब तरीका बदल गया है – आज छोटी-छोटी जगहों के संघर्ष मिल कर एक बड़ा आंदोलन बना रहे हैं.

इसकी दो वजहें हैं. यह जनता के सवालों को संबोधित करने में चुनावी राजनीति की नाकामी को दिखाता है. हर जगह जनता की अपनी मुश्किलें और ज़रूरते हैं, लेकिन नेता अक्सर उनको हल नहीं करते. यह नाराज़गी छोटे-छोटे स्थानीय आंदोलनों को जन्म देती है, जिनको अहमियत नहीं दी जाती. धीरे-धीरे इन आंदोलनों का नेतृत्व करनेवाले लोग महसूस करते हैं कि उन्हीं की तरह और लोग भी हैं, जो ऐसी ही तकलीफ में हैं. और उनका विरोधी एक है. इस तरह वे एक साथ आतें हैं और आंदोलन बड़े बन जाते हैं. लोगों का साथ आना ज़रूरी है. मेरा मानना है कि लेखकों के सवाल को किसान उठाएं और किसानों के सवाल को लेखक उठाएं.

दूसरी वजह ये है कि अब छात्र वो अकेला तबका है, जो एक साथ एक बड़ी तादाद में एक साथ रहते हैं. आरक्षण और स्कॉलरशिप की मदद से अनगिनत नौजवान उच्च शिक्षा तक पहुंच पाते हैं. अब शिक्षा के निजीकरण ने और फंडिंग में कटौती की वजह से वे पाते हैं कि उनके यहां पहुंचते ही उनकी ज़मीन छीनी जा रही है.

साथ ही वे एक नया नज़रिया लेकर इन संस्थानों में पहुंच रहे हैं – वे एक शिक्षित और सवालिया नज़रों से अपनी पृष्ठभूमियों और अपने समाज की तरफ़ देख रहे हैं, जैसा रोहित वेमुला ने किया. इन्हीं वजहों से वे सड़कों पर उतर रहे हैं.

वे अपने समुदायों से जुड़े रहते हैं, इसलिए जब वे संघर्ष करते हैं, उनके समुदाय उस संघर्ष से जुड़ जाते हैं और छात्रों का आंदोलन समाज का आंदोलन बन जाता है. इसीलिए उच्च शिक्षण संस्थान, ख़ास कर देश भर के विश्वविद्यालय युद्ध के मैदान बनते जा रहे हैं.

Downloaded from PDFmaza.com

सरकार छात्रों और उत्पीड़ितों की इस अभूतपूर्व एकता से घबराई हुई थी. इस आंदोलन से जुड़े लड़ने वाले लोग उसकी नज़रों में थे. ख़ास तौर से जेएनयू हमेशा ही इनके निशाने पर रहा है. सिर्फ़ एबीवीपी ही नहीं, पांचजन्य से लेकर सुब्रमण्यम स्वामी तक, हर कोई जेएनयू के पीछे पड़ा हुआ था.

यह कहा गया कि जेएनयू में आतंकवादी रहते हैं, यहां बॉर्डर सेक्योरिटी फोर्स (बीएसएफ) तैनात कर देनी चाहिए. सारे होस्टलों को खाली करके उसका 'शुद्धिकरण' कराना चाहिए. इसी दौरान सेमिनारों के लिए जेएनयू को मिलने वाले फंड भी घटा दिए गए.

लेकिन जस्टिस फॉर रोहित वेमुला का आंदोलन छात्रों के आंदोलन से विकसित होकर एक जनांदोलन का रूप ले रहा था. और तभी 9 फरवरी की घटना घटी.

Downloaded from PDFmaza.com

भाग 5तिहाड़

8 फरवरी को जेएनयूएसयू ने जनता के गीत गानेवाली शीतल साठे और उनके साथियों का एक सांस्कृतिक कार्यक्रम कराया था. शीतल साठे और उनके पति सचिन माली माओवादियों से संबंध के आरोप में गिरफ़्तार हुए थे. शीतल ज़मानत पर हैं, लेकिन सचिन अब भी जेल में हैं. कार्यक्रम देर रात तक चला. सबके जाते-जाते रात के करीब दो बज गए.

कार्यक्रम की तैयारियों में मैं पूरे दिन व्यस्त रहा था. पिछले कुछ दिन भी व्यस्त ही गुज़रे थे. एक यूथ कॉन्फ्रेंस के लिए कुछ दिन मैं राउरकेला में था. सात फरवरी को लौट कर प्रेस क्लब में शीतल साठे के कार्यक्रम में गया था. भाग दौड़ की वजह से मैं ठीक से नींद नहीं ले पा रहा था. फोन को चार्ज में लगा कर मैं सो गया. मेरे साथ मेरे कुछ साथी कमरे तक आए थे. जाते वक़्त लाइट का स्विच ऑफ करते हुए उन्होंने ग़लती से फोन चार्ज करने वाले प्लग का स्विच भी ऑफ कर दिया. इससे फोन चार्ज नहीं हो पाया और अपने आप बंद हो गया.

इस वजह से अगले पूरे दिन मैं बिना रुकावट के सोता रहा और शाम हुई तब जागा. हमेशा की तरह मैंने उठने पर फोन देखा लेकिन वह बंद था. मैंने उसका सिम अपने पुराने फोन में लगाया, फ्रेश हुआ और चाय की दुकान पर गया. शाम के करीब साढ़े पांच बज रहे थे.

मैं चाय-परांठा लेकर वहीं खड़ा ही था कि उधर से गुज़रते हुए एक छात्र ने कहा , ‘कैसे प्रेसीडेंट हो? उधर साबरमती ढाबे पर मारपीट हो रही है और तुम यहां चाय पी रहे हो?’

मैंने उससे कहा, ‘मारपीट बंद कराना प्रेसीडेंट का काम है क्या? यह तो सिक्योरिटी गार्ड का काम है.’

उसने बताया कि यह आम मारपीट नहीं थी – एबीवीपी साबरमती ढाबे पर एक सांस्कृतिक कार्यक्रम केआयोजकों को परेशान कर रहा है. इतने में मैंने अपने ही होस्टल, ब्रह्मपुत्र, में रहने वाले एबीवीपी के एक लड़के को दौड़ कर जाते हुए देखा. उसकी तेज़ी से मुझे इस मामले की गंभीरता का अंदाज़ा लगा. मैं भी साबरमती की तरफ़ चल पड़ा.

Downloaded from PDFmaza.com

ढाबे के पास खड़े एबीवीपी के लोग नारे लगा रहे थे: 'खून से तिलक करेंगे, गोलियों से आरती. पुकारती पुकारती मां भारती पुकारती.'

मुझे देख कर एबीवीपी का एक कार्यकर्ता मेरी तरफ़ आया और व्यंग्य करते हुए बोला, 'कहां हैं प्रेसीडेंट साहब? देखिए क्या सब हो रहा है.'

जब मैंने उससे पूछा कि क्या हो रहा है, उसने जवाब दिया, 'अफज़ल गुरु की बरसी मनाई जा रही है.'

मुझे उस पर यकीन नहीं आया. 2001 में हुए संसद हमले में भागीदार होने के आरोपी अफज़ल गुरु को जेल में रखा गया था और बाद में फांसी दे दी गई थी.

मैंने कहा कि कोई अफज़ल गुरु की बरसी क्यों मनाएगा. वह फौरन बोला, 'यहां एक सांस्कृतिक कार्यक्रम रखा गया था. हम उसका विरोध कर रहे हैं.'

मैंने कहा कि अच्छा है, विरोध करो. लेकिन मुझे बताया गया कि मारपीट हो रही है. उसने जवाब दिया कि मारपीट नहीं हो रही है. हम यहां शांति से खड़े होकर विरोध कर रहे हैं.

करीब पचास मीटर की दूरी पर छात्र गोल घेरा बना कर खड़े थे. वे कुछ कर नहीं रहे थे. घेरे के भीतर एक लड़की हाथ में किताब लिए एक बेंच पर खड़ी थी और वहां जुटे लोगों से कुछ कह रही थी. मैंने आसपास नज़र दौड़ाई. वहां पुलिस की एक गाड़ी खड़ी थी और कुछ पुलिसकर्मी सादी वर्दी में खड़े थे.

इतने में वहां जुटे छात्रों का जुलूस सड़क पर आया और गंगा ढाबा की तरफ़ बढ़ने लगा. एबीवीपी के लोगों ने उनको रोकने की कोशिश की. मैंने सिक्योरिटी गार्डों को कहा कि वो एक चेन बना कर दोनों समूहों को अलग करें और आपस में झगड़ा नहीं होने दें. वहां कोई झगड़ा नहीं हुआ. थोड़ी नोकझोंक हुई, लेकिन कोई टकराव नहीं हुआ. गंगा ढाबा पर वसंत कुंज थाना प्रभारी (एसएचओ) के साथ करीब सौ की संख्या में पुलिस वहां खड़ी थी. एक तरफ़ एबीवीपी लोग थे, दूसरी तरफ़ अन्य छात्रों का समूह था. दोनों तरफ़ से नारेबाज़ी हो रही थी- एबीवीपी मुर्दाबाद, गुंडागर्दी नहीं चलेगी, जेएनयू है छात्रों का, एबीवीपी की जागीर नहीं जैसे नारे एक तरफ़ से लग रहे थे.

Downloaded from PDFmaza.com

एबीवीपी नारे लगा रहा था- जहां हुए बलिदान मुखर्जी वो कश्मीर हमारा है, जो कश्मीर हमारा है वो सारा का सारा है, चीन के दलालों को धक्के मारो सालों को.

थाना प्रभारी ने मुझसे कहा कि मैं वहां जुटे लोगों से बात करूं और उन्हें वहां से जाने को कहूं. मुझे महसूस हुआ कि छात्रों में एबीवीपी के ख़िलाफ़ गुस्से को शांत करना है और तनाव को कम करने का तरीका निकालना है. मुझे पता नहीं था कि कार्यक्रम में क्या हुआ था और क्या नारे लगे थे. लेकिन अपने अनुभव से मुझे यह ज़रूर पता था कि एबीवीपी उन कार्यक्रमों को रोकने की कोशिश करता है, जो उसकी विचारधारा के ख़िलाफ़ होते हैं. मुझे यह भी महसूस हुआ कि कार्यक्रम आयोजित करना उसके आयोजकों का लोकतांत्रिक अधिकार था, भले ही मैं उससे सहमत नहीं हूं.

मैंने कहा कि आरएसएस के जनवरी-फरवरी (नौनिहालों) एबीवीपी के लोगों को गंभीरता से लेने की ज़रूरत नहीं है. आख़िर बेचारे वे क्या करेंगे. अच्छे दिनों की उम्मीद में उन्होंने भाजपा को वोट दिया. अच्छे दिन तो आए नहीं. अब वे इसलिए उछल-कूद कर रहे हैं कि कम से कम एडहॉक लेक्चरशिप मिल जाए. इतनी बेरोज़गारी है, इसलिए ऐसा करना इन बेचारों की मजबूरी है.

मैंने एबीवीपी का मज़ाक बनाने की कोशिश की. इससे छात्रों के बीच तनाव कम हुआ. यही मैं चाहता था. इसके बाद मैंने देश के अंदर चल रही व्यापक राजनीति और अपने नए वीसी पर तंज़ किया, जिसको भाजपा ने नियुक्त किया था. वहां आए लोग धीरे-धीरे लौट गए.

सिक्योरिटी गार्डों ने मुझे विस्तार से बताया. उन्होंने बताया कि छात्रों ने अफज़ल गुरु की असंवैधानिक तरीके से की गई हत्या पर सवाल उठाते हुए एक सांस्कृतिक कार्यक्रम रखा था. प्रशासन ने उसकी अनुमति रद्द कर दी थी. लेकिन आयोजकों ने कार्यक्रम करने का फैसला किया था. माइक नहीं लगाए जा सके, पोस्टर नहीं लगाने दिया गया. इसलिए उन्होंने बिना माइक के ही कविताएं पढ़ीं. फिर उन्होंने एक जुलूस निकाला. एबीवीपी ने इन सबको रोकने की कोशिश की.

हाल ही में कई बार एबीवीपी ने ऐसा किया था. जब जेएनयू में कास्ट ऑन द मेन्यु कार्ड और मुज़फ्फरनगर बाक़ी है फिल्मों का प्रदर्शन हो रहा था, तब भी एबीवीपी ने ऐसा ही हंगामा किया था. उन्होंने एफटीआईआई पर बनी एक डॉक्युमेंटरी की स्क्रीनिंग को भी रोकने की कोशिश की थी. पहले वो

Downloaded from PDFmaza.com

खुद आकर रोकते थे. अब केंद्र में अपनी सरकार होने की वजह से, वे प्रशासन से कह कर कार्यक्रमों पर अंकुश लगाने लगे हैं, यही इनकी सहिष्णुता है. मुझे याद है कि कुछ साल पहले कुछ छात्रों ने असुरों के इतिहास पर एक कार्यक्रम आयोजित किया था. एबीवीपी ने यह कह कर उसे रोकने की कोशिश की कि यहां महिषासुर की जयंती मनाई जा रही है. बात को ग़लत तरीके से पेश करना इनकी पुरानी आदत है.

गार्डों से बात करने के बाद मैं वापस लौट आया.

उसी रात को मैंने सभी संगठनों की एक बैठक बुलाई थी. यह छात्र संघ चुनावों को लेकर था जिसके बारे में मैंने प्रेसीडेंशियल स्पीच में वादा किया था कि चुनाव अपने छात्र संघ संविधान के तहत कराए जाएंगे. जैसा कि मैं बता चुका हूं, जेएनयू में चुनाव लिंगदोह कमेटी की सिफारिशों के मुताबिक हो रहे हैं. बैठक के अंत में एक लड़के ने बताया कि एबीवीपी के लोग शाम को हुए कार्यक्रम के बारे में शिकायत करने के लिए थाने गए हैं.

सभी संगठनों के प्रतिनिधियों ने कहा कि यूनियन को जाकर पता करना चाहिए कि मामला क्या है? इसमें पुलिस की बात कहां से आ गई? हममें से करीब दस लोग थाने गए. वहां एबीवीपी के लोग पहले से मौजूद थे. जब मैंने पूछा कि वे वहां क्या कर रहे थे, उन्होंने बताया कि वो मारपीट की शिकायत दर्ज़ कराने आए हैं.

मैंने उनसे कहा कि कोई मारपीट तो हुई नहीं थी. अगर उन्हें कार्यक्रम से शिकायत थी तो वे जेएनयू प्रशासन से शिकायत कर सकते थे. ऐसी तो कोई घटना नहीं हुई थी जिसमें पुलिस की दखल की ज़रूरत पड़े.

मैंने उनसे पूछा कि क्या उन्होंने मेडिकल लीगल सर्टिफिकेट (एमएलसी) कराया है, जो ऐसी किसी शिकायत के लिए ज़रूरी होता है? उन्होंने नहीं कराया था. मैंने पुलिस से शिकायत की कॉपी मांगी. इसे देख कर मुझे बड़ा झटका लगा. जिन लोगों के नाम अभियुक्तों के रूप में लिखाए गए वो कैंपस के प्रमुख एक्टिविस्ट थे. एबीवीपी को छोड़ कर सभी बड़े संगठनों से चुन-चुन कर उनके नाम लिखाए गए थे. उनमें ज़्यादातर लोग दलित, महिला, मुस्लिम या पिछड़े तबकों के थे.

हमलोग थाने से वापस आ गए. उस वक़्त मुझे लग रहा था कि वे बस परेशान करने के लिए ऐसा कर रहे हैं, मैं एबीवीपी से ऐसी ही उम्मीद करता था.

Downloaded from PDFmaza.com

मुझे नहीं पता था कि इसको लेकर एक पूरी योजना काम कर रही थी.

अगली सुबह एक फोन कॉल ने मुझे जगाया, जो अलार्म की तरह हर सुबह मुझे जगाता है. यह एक टीवी चैनल से था. वे जेएनयू में अफज़ल गुरु की बरसी मनाने और राष्ट्र-विरोधी नारे लगाए जाने पर मेरी राय पूछ रहे थे. राष्ट्र-विरोधी नारे? जेएनयू में? यह सुनकर मैं हैरान हुआ. दूसरी तरफ़ से कहा गया कि ऐसा सचमुच हुआ था और वे फोन पर मेरा इंटरव्यू लेना चाहते थे. मैं तैयार हो गया. कॉल ट्रांस्फर हुआ.

वही सवाल दोहराया गया. मैंने भी वही बात कही जो मैं कह चुका था – कि जेएनयू में अफज़ल गुरु की बरसी नहीं मनाई गई थी और अगर किसी ने राष्ट्र-विरोधी नारे लगाएं हैं तो मैं इसकी कड़े शब्दों में निंदा करूंगा. पहले की तरह इस बार भी एबीवीपी इसको गढ़ रहा है. छात्रों के हकों के लिए लड़ने के बजाए यह कैंपस में सरकार के जासूस की तरह काम कर रहा है.

इसके बाद लगातार टीवी चैनलों के फोन आते रहे. शुरू में सब फोन पर ही मुझसे बात कर रहे थे, कि न्यूज़24 चैनल ने '5 की पंचायत' नाम के शो के लिए मुझे स्टूडियो बुलाया. जल्दी ही कई चैनल उसी स्लॉट में मुझे अपने स्टूडियो में बुलाने लगे. मैं अब थोड़ा चिंतित होने लगा था कि मामला क्या है. दरअसल मैं टीवी नहीं देखता हूं. होस्टल में एक कॉमन टीवी है, लेकिन उसे देखने का वक़्त नहीं मिलता है. तब मेरे कमरे में इंटरनेट नहीं था और मैंने उस दिन का अखबार भी नहीं देखा था.

मुझे स्टूडियो ले जाने के लिए जब न्यूज़24 की गाड़ी आई तो मुझे बताया गया कि उसी बहस में एबीवीपी का एक प्रतिनिधि भी आएगा और मुझसे पूछा गया कि क्या उसके साथ एक ही कार में जाने में मुझे कोई दिक्कत थी. मुझे इससे कोई दिक्कत नहीं थी.

उसको लेने के लिए गाड़ी प्रशासनिक भवन के पास पहुंची. वहां एबीवीपी जेएनयू प्रशासन के ख़िलाफ़ प्रदर्शन करते हुए मांग कर रहा था कि कार्यक्रम के आयोजकों पर कार्रवाई की जाए. वो गाड़ी में बैठा. बातें करते हुए हम चैनल के लिए रवाना हुए. उसके पास चने थे. उसने मुझे भी चने खिलाए. मुझे मालूम नहीं था कि आज जो लड़का मुझे चने खिला रहा था, उसकी सरकार मुझे जेल के चने खिलाने की तैयारी में थी.

चैनल में हिंदू महासभा का एक आदमी और कांग्रेस का नेता बैठा था. वहीं मैंने पहली बार 9 फरवरी का वीडियो देखा, जो सब जगह भेजा जा रहा था और जिसने मीडिया में एक उन्माद पैदा कर दिया था. भारत पर हमला

Downloaded from PDFmaza.com

करने और कश्मीर की आज़ादी की लड़ाई का समर्थन करने वाले नारे लगाए जा रहे थे. मुझे विश्वास नहीं हुआ कि यह जेएनयू में हुआ था. मैंने कहा कि मुझे भरोसा नहीं है कि ऐसी नारेबाज़ी जेएनयू में हो सकती है. दूसरे, अगर यह हुआ भी है तो मैं इसका समर्थन नहीं करता. लेकिन मैंने यह सवाल भी किया कि एबीवीपी क्यों इस पूरे मामले को अपने पक्ष में मोड़ने की कोशिश कर रहा था. यह कैंपस का माहौल ख़राब करने और जेएनयू को बदनाम करने की एक कोशिश थी.

मुझे यह साफ़ हो गया कि यह जेएनयू पर हमला है. एबीवीपी पहले से ही चाहता रहा है कि गरीब पढ़ाई न कर सकें. क्योंकि तीन हज़ार कमाने वाले के बेटे और बेटियां अगर पीएचडी करेंगे तो सवाल करेंगे जिसका जवाब देना मुश्किल होगा. उन्हीं दिनों रोहित वेमुला के इंसाफ के लिए एक आंदोलन चल रहा था और साफ़ तौर पर उसे भटकाने के लिए फर्जी 'राष्ट्रवाद' का मुद्दा गढ़ा जा रहा था.

बहस ख़त्म हुई. अभी मैं स्टूडियो में ही था कि ज़ी न्यूज़ का एक आदमी दौड़ा-दौड़ा आया कि मैं बस दस मिनट के लिए उसके चैनल में चले चलूं. जब मैं वहां पहुंचा, ज़ी न्यूज़ पर चर्चा शुरू हो चुकी थी. एंकर जिस तरह से बोल रहा था, उसमें वह खुद ही गवाह, मुद्दई, और जज बना हुआ था. मैंने सबसे पहले उसी से सवाल किया - आपको तनख्वाह कौन देता है, ज़ी न्यूज़ या आरएसएस? इस कार्यक्रम तक आते-आते मुझे उस वीडियो को लेकर संदेह होने लगा था. हालांकि 9 फरवरी की रात को मैंने गंगा ढाबा पर ज़ी न्यूज़ के कैमरामैन को देखा था. उन्होंने कुछ रॉ वीडियोज़ लिए होंगे. लेकिन रॉ तो रॉ होता है- वो असली होता है. चैनल पर जो दिखाया जाता है, उसे संपादित किया जाता है और उसमें छेड़छाड़ की जा सकती है.

फेसबुक और व्हाट्सअप पर मुझे गालियां देने का सिलसिला शुरू हो गया था. अनजान नंबरों से मुझे गालियां देते हुए लगातार कॉल आ रहे थे. इन लोगों के नाम अजीब-अजीब होते जैसे 'भक्त', 'ओल्ड मॉन्क'. उस रात मेरे फोन पर कोई भी कॉल नहीं आया मुझे संदेह हुआ कि या तो कंपनी ने मेरा नंबर ब्लॉक कर दिया था या फिर नेटवर्क जाम हो गया था.

अगले दिन, 11 फरवरी को जेएनयू छात्र संघ ने दो काम किए गए. हमने एक पर्चा निकाला, जिसमें दिखाए जा रहे वीडियो के आधार पर नारों की निंदा की गई थी. हमने एबीवीपी के ख़िलाफ़ प्रदर्शन किया और कहा कि जेएनयू एक प्रगतिशील विश्वविद्यालय है, इसलिए एबीवीपी जानबूझ कर जेएनयू को

Downloaded from PDFmaza.com

नुकसान पहुंचाना चाहता है और इसके भीतर और बाहर बदमाशी कर रहा है.

उस प्रदर्शन के दौरान पहली बार मैंने जेएनयू में मीडिया की इतनी भारी मौजूदगी देखी. छात्र से ज़्यादा मीडियाकर्मी दिख रहे थे. हम वीसी से मिले और उनसे मांग की कि वो इस पूरे मामले की एक निष्पक्ष जांच कराएं. वीसी ने कहा कि उन्होंने एक उच्चस्तरीय जांच कमेटी बना दी है.

हमने उनसे इस कमेटी के सदस्यों के नाम मांगे. वीसी ने कहा कि उन्हें नाम नहीं पता हैं और रजिस्ट्रार को इसकी जानकारी होगी. हमें यह अजीब बात लगी क्योंकि कमेटी वीसी ने बनाई थी. हमें यह बात भी गैरमामूली लगी कि वीसी आमतौर पर होने वाली प्रॉक्टोरियल जांच नहीं करा रहे थे. वीसी का जवाब था कि चूंकि मीडिया ने इस मामले को इतना बड़ा बना दिया था इसलिए इसका जल्दी निबटारा करना ज़रूरी है.

हमने उनसे मांग की कि जांच कमेटी में सभी स्कूलों और समाज के वंचित-उत्पीड़ित तबकों से आनेवाले लोगों का प्रतिनिधित्व हो. मुझे अंदेशा हो रहा था कि हैदराबाद विवि में रोहित वेमुला और उनके साथियों के साथ जो हुआ था, जिसमें जांच कमेटी में निष्पक्ष प्रतिनिधित्व नहीं था, वही इतिहास यहां भी दोहराया जाएगा. मेरा यह अंदेशा बेबुनियाद नहीं था. जस्टिस फॉर रोहित वेमुला आंदोलन के दौरान कुछ ही दिनों पहले जेएनयू में हम भूख हड़ताल पर बैठे थे. इसी दौरान एक लड़के ने प्रशासनिक भवन पर जय भीम का नारा लिख दिया था, जहां भूख हड़ताल चल रही थी. ये यहां की आम संस्कृति है. लेकिन प्रॉक्टर ऑफिस से उस लड़के को नोटिस भेज दिया था.

हमारी चिंताएं सही साबित हुईं. जब हम रजिस्ट्रार से मिलने गए तो उन्होंने तीन सदस्यों वाली जांच कमेटी के नाम हमें बताए. इन तीनों पर कैंपस में सामाजिक न्याय के सवाल को कमज़ोर करने का आरोप पहले से ही लगता रहा था. हमने मांग की कि एक पांच सदस्यीय जांच कमेटी होनी चाहिए और यह हरेक पहलू पर जांच करे कि कार्यक्रम की अनुमति क्यों रद्द की गई और किसके कहने पर ऐसा किया गया. मीडिया को किसने बुलाया. वीडियो को सही और ग़लत होने की भी जांच होनी चाहिए. हम इस संकट की जड़ में भी पहुंचना चाहते थे – यह चिंताजनक था कि पहले तो छात्रों को कार्यक्रम करने की इजाज़त दी गई और फिर एबीवीपी के कहने पर इसे वापस ले लिया गया.

Downloaded from PDFmaza.com

रजिस्ट्रार ऑफिस से आकर मैंने छात्रों को संबोधित किया, जो अभी नीचे प्रदर्शन कर रहे थे. मैंने उनके सामने यूनियन की पोज़ीशन रखी.

मेरे सामने दो मुद्दे थे. पहली बात थी कि आरएसएस तय कर रहा था कि क्या देशभक्ति है और क्या देशद्रोह है. इसको क्या नैतिक अधिकार है, जिसने देश की आज़ादी की लड़ाई तक में हिस्सा नहीं लिया? मेरे निशाने पर उनका यह इतिहास था.

मैं इसको भी साफ़ करना चाहता था कि अगर नारे लगाए गए थे तो वे ग़लत थे और जेएनयू प्रशासन और पुलिस की नाकामी थी कि उसकी मौजूदगी में ऐसे नारे लगाए गए. इस समस्या को दूर करने के बजाए वे इस पर राजनीतिक रोटी सेंक कर इसका फायदा उठाने की कोशिश कर रहे थे. मैं इस दोमुंहेपन को उजागर करना चाहता था.

वहां पर मैंने यह कहा:

वो तिरंगा झंडा जलाने वाले लोग हैं, वो सावरकर के चेले हैं जिन्होंने अंग्रेज़ों से माफी मांगी थी. हरियाणा के अंदर जो अभी खट्टर सरकार है, इसने शहीद भगत सिंह के नाम पर जो एक एयरपोर्ट का नाम रखा गया था, उसको एक संघी के नाम पर रख दिया.

कहने का मतलब यह है कि हमको देशभक्ति का सर्टिफिकेट आरएसएस से नहीं चाहिए. हमको नेशनलिस्ट होने का सर्टिफिकेट आरएसएस से नहीं चाहिए. हम हैं इस देश के, और हम इस मिट्टी से प्यार करते हैं. इस देश के अंदर जो 80 फीसदी गरीब अवाम है, हम उसके लिए लड़ते हैं. हमारे लिए यही देशभक्ति है.

हमें पूरा भरोसा है बाबासाहेब (आंबेडकर) के ऊपर. हमें पूरा भरोसा है अपने देश के संविधान के ऊपर. और हम इस बात को पूरी मज़बूती के साथ कहना चाहते हैं कि इस देश के संविधान पर अगर कोई उंगली उठाएगा…चाहे वो उंगली संघियों की हो, चाहे वो उंगली किसी की भी हो, उस उंगली को हम बर्दाश्त नहीं करेंगे.

हम संविधान में भरोसा करते हैं. लेकिन जो संविधान झंडेवालान (दिल्ली में आरएसएस का मुख्यालय) और नागपुर में पढ़ाया जाता है, उस संविधान पर हमको कोई भरोसा नहीं. हमको मनुस्मृति पर कोई भरोसा नहीं है. हमको इस देश के अंदर जो जातिवाद है उस पर कोई भरोसा नहीं है.

Downloaded from PDFmaza.com

वही संविधान, वही बाबासाहेब आंबेडकर संवैधानिक उपचार की बात करते हैं. वही बाबासाहेब आंबेडकर कैपिटल पनिशमेंट को हटाने की बात करते हैं. वही बाबासाहेब आंबेडकर अभिव्यक्ति की आज़ादी की बात करते हैं. और हम कांस्टिट्यूशन को अपहोल्ड करते हुए, जो हमारा बुनियादी अधिकार है हम उसको अपहोल्ड करता चाहते हैं.

लेकिन ये बड़े शर्म और दुख की बात है कि एबीवीपी अपने मीडिया सहयोगियों के साथ पूरे मामले को ऑर्केस्ट्रेटेड (प्रायोजित) अभियान चला रहा है,

कल एबीवीपी के जॉइंट सेक्रेटरी ने कहा कि हम फेलोशिप के लिए लड़ते हैं. कितना रिडिकुलस हास्यास्पद लगता है ये सुन कर. इनकी सरकार, मैडम 'मनु'स्मृति ईरानी फेलोशिप को ख़त्म करती हैं और कहते हैं कि हम फेलोशिप के लिए लड़ते हैं. इनकी सरकार ने हायर एजुकेशन में 17 प्रतिशत बजट को कट किया है.

इससे हमारा होस्टल पिछले चार सालों में नहीं बना. उससे हमको वाई-फाई आज तक नहीं मिला. और एक बस दी भेल (बीएचईएल) ने तो उसमें तेल डालने के लिए प्रशासन के पास पैसा नहीं है. और एबीवीपी के लोग देव आनंद की तरह तस्वीर खिंचवा कर कहते हैं कि वे होस्टल बनवा रहे हैं, वे वाई-फाई करवा रहे हैं, वे फेलोशिप बढ़वा रहे हैं.

इनकी पोलपट्टी खुल जाएगी साथियो, अगर इस देश में बुनियादी सवालों पर चर्चा होगी. और मुझे गर्व है जेएनयूआइट होने पर क्योंकि हम बुनियादी सवाल पर चर्चा करते हैं. हम इस देश में महिलाओं, दलितों, आदिवासियों और अल्पसंख्यकों के सम्मान से जुड़े मुद्दे उठाते हैं. तो इनका स्वामी (सुब्रमणियन स्वामी) कहता है कि जेएनयू में जेहादी रहते हैं, जेएनयू के लोग हिंसा फैलाते हैं.

मैं जेएनयू से चुनौती देता हूं आरएसएस के विचारकों को. उन्हें बुलाओ और करो हमारे साथ डिबेट. हम करना चाहते हैं हिंसा के कॉन्सेप्ट पर डिबेट. हम सवाल खड़ा करना चाहते हैं एबीवीपी के उस स्लोगन पर, जिसमें वो कहता है बेशरम कि खून से तिलक करेंगे, गोलियों से आरती. किसका खून बहाना चाहते हो इस मुल्क में तुम? क्या चाहते हो इस मुल्क में तुम? तुमने गोलियां चलाई हैं. अंग्रेज़ों के साथ मिलकर इस देश की आज़ादी के लिए लड़ने वाले लोगों पर गोलियां चलाई हैं. इस मुल्क के अंदर गरीब जब अपनी रोटी की बात करता है, जब भुखमरी से मर रहे लोग अपने हक की

Downloaded from PDFmaza.com

बात करते हैं तो तुम उन पर गोली चलाते हो. तुमने गोली चलाई है इस मुल्क में मुसलमानों के ऊपर. तुमने गोली चलाई है इस मुल्क में जब महिलाएं अपने अधिकार की बात करती हैं तो तुम कहते हो पांचों उंगलियां बराबर नहीं हो सकतीं. महिलाओं को सीता की तरह रहना चाहिए और सीता की तरह अग्निपरीक्षा देना चाहिए.

इस देश में लोकतंत्र है और यह लोकतंत्र सबको बराबरी का हक देता है, चाहे वो विद्यार्थी हो, चाहे वो कर्मचारी हो, चाहे वो गरीब हो, मज़दूर हो, किसान हो या अंबानी या अडानी हो, सबके हक की बराबरी की बात करता है. उसमें जब हम महिलाओं के हक की बात करते हैं तो ये कहते हैं कि आप भारतीय संस्कृति को बरबाद करना चाहते हैं.

हम बरबाद करना चाहते हैं शोषण की संस्कृति को, जातिवाद की संस्कृति को, मनुवाद और ब्राह्मणवाद की संस्कृति को. आपकी संस्कृति की परिभाषा से हमारी संस्कृति की परिभाषा तय नहीं होगी. इनको दिक्कत होती है जब इस मुल्क के लोग लोकतंत्र की बात करते हैं, जब लोग लाल सलाम के साथ नीला सलाम का नारा लगाते हैं. जब मार्क्स के साथ बाबासाहब भीमराव आंबेडकर का नाम लेते हैं. जब अशफाक उल्ला का नाम लिया जाता है, तब इनके पेट में दर्द होता है, यह इनकी साजिश है. ये अंग्रेज़ों के चमचे हैं, लगाओ मेरे ऊपर डिफेमेशन (मानहानि) का केस, मैं कहता हूं आरएसएस का इतिहास अंग्रेज़ों के साथ खड़ा होने का इतिहास है. आज ये देश के गद्दार आज देशभक्ति का सर्टिफिकेट बांट रहे हैं.

मेरा मोबाइल चेक करो साथियो. मेरी मां और बहन को भद्दी-भद्दी गालियां दी जा रही हैं. तुम कौन सी भारत माता की बात करते हो? अगर तुम्हारी भारत माता में मेरी मां शामिल नहीं है तो मुझे ये भारत माता का कॉन्सेप्ट मंज़ूर नहीं है.

मेरी मां आंगनबाड़ी सेविका है, उसके 3000 से हमारा घर चलता है. और ये उसके ख़िलाफ़ गालियां दे रहे हैं. मुझे शर्म है इस देश पर. इस देश के अंदर जो गरीब, मज़दूर, दलित किसान हैं उनकी माताएं भारत माताएं नहीं हैं. मैं कहूंगा जय, भारत की माताओं की जय, पिताओं की जय, माताओं, बहनों की जय, किसानों, मज़दूरों, दलितों आदिवासियों की जय. मैं कहूंगा, तुममें हिम्मत है तो बोलो इंकलाब ज़िंदाबाद, बोलो भगत सिंह ज़िंदाबाद, बोलो सुखदेव ज़िंदाबाद, बोलो अशफाक उल्ला खां ज़िंदाबाद, बोलो बाबासाहेब ज़िंदाबाद, तब हम मानेंगे तुम इस देश पे भरोसा करते हो.

Downloaded from PDFmaza.com

तुम बाबासाहेब की 125वीं जयंती मनाने का नाटक कर रहे हो, है तुममें हिम्मत तो सवाल उठाओ जो बाबासाहेब ने उठाया कि इस देश के अंदर जातिवाद सबसे बड़ी समस्या है. बोलो जातिवाद पर, लाओ प्राइवेट सेक्टर में रिज़र्वेशन, तमाम जगह रिज़र्वेशन को लागू करो, तब हम मानेंगे कि तुमको इस देश पर भरोसा है.

ये देश तुम्हारा कभी नहीं था और कभी नहीं हो सकता. कोई देश अगर बनता है तो वहां के लोगों से बनता है. अगर देश की अवधारणा में भूखे लोगों के लिए जगह नहीं है, गरीब मज़दूरों के लिए जगह नहीं है तो वह देश नहीं है.

कल मैं टीवी डिबेट में यह बोल रहा था कि ये गंभीर समय है. मुल्क में फासीवाद जिस तरीके से आ रहा है, मीडिया भी सुरक्षित नहीं रहने वाला है. उसके भी स्क्रिप्ट संघ के ऑफिस से लिखकर आएंगे और जैसे कभी इंदिरा गांधी के समय में कांग्रेस के ऑफिस से आते थे.

मीडिया के कुछ साथी कह रहे थे कि हमारे टैक्स के पैसे से, सब्सिडी के पैसे से जेएनयू चलता है, हां सच है कि जेएनयू सब्सिडी के पैसे से चलता है, लेकिन ये सवाल खडा करना चाहता हूं: यूनिवर्सिटी होती किसलिए है? यूनिवर्सिटी होती है कि समाज के अंदर जो "कॉमन कन्साइंस" है, उसका क्रिटिकल एनालिसिस किया जाए. अगर यूनिवर्सिटी इस काम में फेल होगी तो कोई देश नहीं बनेगा, अगर इस देश में लोग शामिल नहीं होंगे तो यह सिर्फ़ और सिर्फ़ पूंजीपतियों के लिए सिर्फ़ और सिर्फ़ लूट और शोषण की चरागाह बन करके रह जाएगा.

अगर देश के अंदर लोगों की संस्कृति, मान्यताओं, उनके अधिकारों को शामिल नहीं करेंगे तो देश नहीं बनेगा. हम देश के साथ पूरी तरीके से खड़े हैं और उस सपने के साथ खड़े हैं जिसको भगत सिंह और बाबासाहेब भीमराव आंबेडकर ने देखा. हम उस सपने के साथ खड़े हैं जिसमें सबको बराबरी का हक दिया जाए, हम उस सपने के साथ खड़े हैं सबको जीने का हक हो, सबको खाने पीने रहने का हक हो, हम उस सपने के साथ खड़े हैं. और उस सपने के साथ खड़ा होने के लिए रोहित (वेमुला) ने अपनी जान गंवाई है.

लेकिन मैं कहना चाहता हूं इन संघियों को कि लानत है तुम्हारी सरकार पर, चुनौती है मुझे केंद्र सरकार को कि आपने रोहित (वेमुला) के मामले में जो किया है, वो जेएनयू में हम नहीं होने देंगे. कोई रोहित अपनी जान नहीं

Downloaded from PDFmaza.com

गंवाएगा. रोहित ने जो अपनी कुर्बानी दी है, उस कुर्बानी को हम याद रखेंगे. हम फ्रीडम ऑफ एक्सप्रेशन के पक्ष में खड़े होंगे.

छोड़ दो पाकिस्तान और बांग्लादेश की बात. हम कहते हैं दुनिया के गरीबों एक हो. दुनिया के मज़दूरों एक हो. दुनिया की मानवता ज़िंदाबाद. भारत की मानवता ज़िंदाबाद.

जो इस मानवता के ख़िलाफ़ खड़ा है, हम उसको आज आइडेंटिफाई कर चुके हैं. आज यही हमारे सामने सबसे गंभीर सवाल है कि उस आइडेंटिफिकेशन को हमको बनाकर रखना है. वो जो चेहरा है जातिवाद का, वो जो चेहरा है मनुवाद का, वो जो चेहरा है ब्राह्मणवाद का और पूंजीवाद के गठजोड़ का, उस चेहरे को हमको एक्सपोज़ करना है और सचमुच का लोकतंत्र, सचमुच की आज़ादी, सबकी आज़ादी इस देश में हमको स्थापित करनी है. और वो आज़ादी आएगी और संविधान से आएगी, पार्लियामेंट से आएगी, लोकतंत्र से आएगी और संसद से आएगी.

आप सब तमाम साथियों से अपील है कि तमाम तरह के डिफरेंसेज़ (मतभेद) रखते हुए जो हमारा फ्रीडम ऑफ एक्सप्रेशन है, जो हमारा कांस्टिट्यूशन है, जो हमारा मुल्क है उसकी एकता के लिए हम लोग एकजुट रहेंगे. एकमुश्त रहेंगे (उनके ख़िलाफ़) जो देश तोड़ने वाली ताकतें हैं, आतंकियों को पनाह देने वाले लोग हैं.

एक अंतिम सवाल पूछकर मैं अपनी बात को ख़त्म करूंगा. कौन है कसाब? कौन है अफज़ल गुरु? कौन हैं ये लोग जो आज इस स्थिति में हैं कि अपने शरीर में बम बांधकर हत्या करने को तैयार हैं? अगर ये सवाल यूनिवर्सिटी में नहीं उठेंगे तो फिर मुझे नहीं लगता कि यूनिवर्सिटी होने का कोई मतलब है. अगर हम जस्टिस (इंसाफ) को डिफाइन (परिभाषित)नहीं करेंगे, अगर हम वॉयलेंस (हिंसा) को डिफाइन नहीं करेंगे कि हम वॉयलेंस को कैसे देखते हैं? वॉयलेंस सिर्फ़ ये नहीं होता है कि हम सिर्फ़ बंदूक लेकर किसी को मार दें, वॉयलेंस यह भी होता है कि संविधान में जो दलितों को अधिकार दिया गया है वो अधिकार जेएनयू प्रशासन देने से मना करता है. ये इंस्टिट्यूशनल वॉयलेंस (संस्थाबद्ध हिंसा) है. वे जस्टिस की बात करते हैं, कौन तय करेगा कि जस्टिस क्या है? जब ब्राह्मणवादी व्यवस्था थी तो दलितों को मंदिर में नहीं घुसने दिया जाता था, जब अंग्रेज़ थे तो कुत्तों को और भारतीयों को रेस्टोरेंट में नहीं जाने दिया जाता था, यही जस्टिस था. इस जस्टिस को हमने चैलेंज किया और हम आज भी एबीवीपी और

Downloaded from PDFmaza.com

आरएसएस के जस्टिस को चैलेंज करते हैं कि तुम्हारा जस्टिस हमारे जस्टिस को एकोमोडेट (अपने में शामिल) नहीं कर करता है. अगर तुम्हारा जस्टिस हमारे जस्टिस को एकोमोडेट नहीं कर करता है तो हम नहीं मानेंगे तुम्हारे जस्टिस और तुम्हारी आज़ादी को. हम उस दिन आज़ादी को मानेंगे जब हर इंसान को उसका कांस्टिट्यूशनल राइट (संवैधानिक अधिकार) मिलेगा. जिस दिन हर इंसान को इस मुल्क के अंदर बराबरी का दर्जा दिया जाएगा. उस दिन हम जस्टिस को मानेंगे.

दोस्तो, बहुत गंभीर परिस्थिति है. किसी भी तौर पर जेएनयूएसयू किसी भी हिंसा का, किसी भी आतंकवादी का, किसी भी आतंवादी घटना का, किसी भी देशविरोधी एक्टिविटी (गतिविधि) का समर्थन नहीं करता. कुछ अनआइडेंटिफाई (नहीं पहचाने गए) लोगों ने जो 'पाकिस्तान ज़िंदाबाद' के नारे लगाए हैं, जेएनयूएसयू एकबार फिर से कड़े शब्दों में उसकी भर्त्सना करता है.

साथ ही साथ एक सवाल आप सब लोगों से शेयर करते हुए. ये सवाल है जेएनयू एडमिनिस्ट्रेशन (प्रशासन) और एबीवीपी के लिए, इस कैंपस में हज़ार तरह की चीज़ें होती हैं. अभी आप ध्यान से एबीवीपी का स्लोगन सुनिए. ये कहते हैं 'कम्युनिस्ट कुत्ते.' ये कहते हैं 'अफज़ल गुरु के पिल्ले.' ये कहते हैं 'जिहादियों के बच्चे.' आपको नहीं लगता कि अगर इस संविधान ने हमको नागरिक होने का अधिकार दिया है तो मेरे बाप को कुत्ता कहना मेरे संविधानिक अधिकारों का हनन है कि नहीं? ये सवाल मैं एबीवीपी से पूछना चाहता हूं.

ये सवाल पूछना चाहता हूं जेएनयू एडमिनिस्ट्रेशन से कि आप किसके लिए काम करते हैं? किसके साथ काम करते हैं और किसके आधार पर काम करते हैं? ये बात आज बिल्कुल स्पष्ट हो चुका है कि जेएनयू प्रशासन पहले परमिशन देता है, फिर नागपुर से फोन आने के बाद परमिशन लेता है. ये जो परमिशन लेने देने की प्रक्रिया है, ये उसी तरह से तेज़ हो गई है इस मुल्क में, जैसे फेलोशिप को लेने और देने की प्रक्रिया है. पहले आपको फेलोशिप बढ़ाने के घोषणा होगी फिर कहा जाएगा कि फेलोशिप बंद हो गई है. ये संघी पैटर्न है, ये आरएसएस और एबीवीपी का पैटर्न है. जिस पैटर्न से वो मुल्क को चलाना चाहते हैं. और इसी पैटर्न से वो जेएनयू एडमिनिस्ट्रेशन को चलाना चाहते हैं.

Downloaded from PDFmaza.com

हमारा सवाल है जेएनयू के वाइस चांसलर से कि (9 फरवरी के कार्यक्रम का) पोस्टर लगा था जेएनयू में बाकायदा. पर्चे आए थे मेस में. अगर दिक्कत थी तो जेएनयू एडमिनिस्ट्रेशन पहले परमिशन नहीं देता. अगर परमिशन दिया तो किसके कहने से परमिशन कैंसिल किया? ये बात जेएनयू एडमिनिस्ट्रेशन क्लियर करे.

साथ ही साथ. ये जो लोग हैं, इनकी सच्चाई जान लीजिए. इनसे नफ़रत मत कीजिएगा क्योंकि हम लोग नफ़रत कर नहीं सकते. इनसे मुझे बड़ा ही दया भाव है. ये इतने उछल रहे हैं, क्यों? इनको लगता है जैसे (एफटीआईआई में) गजेंद्र चौहान को बिठाया है, वैसे हर जगह चौहान, दीवान, फरमान ये जारी कर देंगे. चौहान, दीवान और फरमान की बदौलत ये हर जगह नौकरी पाते रहेंगे. इसीलिए ये जब ज़ोर से 'भारत माता की जय' चिल्लाएं तो समझ लीजिए परसों इनका इंटरव्यू डीयू में होने वाला है. नौकरी लगेगी, देशभक्ति पीछे छूट जाएगी. नौकरी लगेगी, फिर भारत माता का कोई ख्याल नहीं. तिरंगा को तो इन्होंने कभी माना ही नहीं, भगवा झंडा भी नहीं फहराएंगे.

मैं सवाल करना चाहता हूं कि कैसी देशभक्ति है? अगर एक मालिक अपने नौकर से सही बर्ताव नहीं करता, अगर किसान अपने मज़दूर से सही बर्ताव नहीं करता, अगर पूंजीपति अपने कर्मचारी से सही बर्ताव नहीं करता. और ये जो अलग अलग चैनलों के लोग हैं, 15-15 हज़ार रुपए में जो पत्रकार काम करते हैं, इनके जो सीईओ हैं, वो इनसे ठीक से बर्ताव नहीं करते हैं. कैसी देशभक्ति है?

वो सारी देशभक्ति भारत-पाकिस्तान के मैच पर ख़त्म कर देते हैं. इसीलिए जब रोड पर निकलते हैं तो केले वाले के साथ बदतमीज़ी से बात करते हैं. केला वाला कहता है- साहब, 40 रुपए दर्जन. कहते हैं- भाग. तुम लोग लूट रहे हो. 30 का दे दो.

केला वाला जिस दिन पलट कर बोल देगा कि तुम सबसे बड़े लुटेरे हो, करोड़ों लूट रहे हो तो कह देंगे कि ये देशद्रोही है. इनकी परिभाषा अमीरी और सुविधा से शुरू होती है और अमीरी और सुविधा पर ख़त्म हो जाती है. मैं बहुत सारे एबीवीपी के दोस्तों को जानता हूं, मैं उनसे पूछता हूं कि क्या सच में तुम्हारे अंदर देशभक्ति की भावना पनपती है? तो कहता है भइया क्या करें, पांच साल की सरकार है, दो साल ख़त्म हो गया है, तीन साल का टॉकटाइम बचा है, जो करना है इसी में कर डालना है.

Downloaded from PDFmaza.com

ठीक है जो करना है कर लो, पर ये बताओ जेएनयू के बारे में झूठ बोलोगे तो कल को तुम्हारा ही साथी जो आजकल ट्रेन में बीफ चेक करता है, तुम्हारा कॉलर पकड़ लेगा, तुम्हारी लिंचिंग करेगा और कहेगा तुम देशभक्त नहीं हो क्योंकि तुम जेएनयूआइट हो. इसका खतरा समझते हो?

(वे बताते हैं) यह तो समझते हैं भइया, इसलिए तो हम #JNUShutdown का जो हैशटैग है, उसका विरोध कर रहे है. हमने कहा बहुत बढ़िया है भाई साहब, पहले हैशटैग के लिए माहौल बनाओ फिर उसका विरोध करो, क्योंकि रहना तो जेएनयू में ही है ना.

इसलिए मैं आप तमाम जेएनयू के लोगों से कहना चाहता हूं कि अभी चुनाव होगा मार्च में और एबीवीपी के लोग ओम का झंडा लगाकर आपके पास आएंगे. उनसे पूछिएगा कि हम देशद्रोही हैं. हम जेहादी, आतंकवादी हैं. हमारा वोट लेकर तुम भी देशद्रोही हो जाओगे. ये उनसे ज़रूर पूछिएगा. तब ये कहेंगे- नहीं, नहीं आप लोग नहीं हैं. वो कुछ लोग थे. तब हम कहेंगे कि वो कुछ लोग थे, ये बात तो तुमने मीडिया में नहीं कही. तुम्हारा वाइस चांसलर नहीं बोला और तुम्हारा रजिस्ट्रार भी नहीं बोल रहा है.

और वो कुछ लोग भी तो कह रहे हैं कि हमने 'पाकिस्तान ज़िंदाबाद' का नारा नहीं लगाया. वो कुछ लोग भी तो कह रहे हैं कि हम आतंकवाद के पक्ष में नहीं हैं. वो कुछ लोग भी तो कह रहे हैं कि हमें परमिशन देकर हमारा परमिशन कैंसिल कर दिया. ये हमारे डेमोक्रेटिक राइट (जनवादी अधिकार) के ऊपर अटैक (हमला) है. वो कुछ लोग हैं जो ये कह रहे हैं कि अगर इस देश के अंदर कहीं लड़ाई लड़ी जा रही है तो उसके समर्थन में हम खड़ा होंगे.

इतनी बात इनके पल्ले पड़ने वाली नहीं है. लेकिन मुझे पूरा भरोसा है कि यहां जो इतने लोग इतने शॉर्ट नोटिस पर आए हैं, उनके पल्ले पड़ रही है. और वो लोग इस कैंपस में एक-एक छात्र के पास जाएंगे और बताएंगे कि एबीवीपी न सिर्फ़ इस देश को तोड़ रहा है, बल्कि जेएनयू को भी तोड़ रहा है. हम जेएनयू को टूटने नहीं देंगे.

जेएनयू ज़िंदाबाद था. जेएनयू ज़िंदाबाद रहेगा. इस देश के अंदर जितने भी संघर्ष हो रहे हैं, उन संघर्षों में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेगा और इस देश के अंदर लोकतंत्र की आवाज़ को मज़बूत करते हुए, आज़ादी की आवाज़ को मज़बूत करते हुए फ्रीडम ऑफ एक्सप्रेशन (अभिव्यक्ति की आज़ादी) की आवाज़ को मज़बूत करते हुए इस संघर्ष को आगे बढ़ाएगा, संघर्ष करेंगे,

Downloaded from PDFmaza.com

जीतेंगे और देश के गद्दारों को परास्त करेंगे, इन्हीं शब्दों के साथ आप तमाम लोगों से एकता की अपील करते हुए अपनी बात को ख़त्म करूंगा.

जय भीम, लाल सलाम.

प्रदर्शन ख़त्म होने के बाद मैंने कुछ और टीवी चैनलों को बाइट दी. उस रात यूनियन की तरफ़ से सभी संगठनों की एक बैठक बुलाई गई. इसका एजेंडा था कि कैंपस में शांति बनाए रखी जाए और उच्च स्तरीय जांच कमेटी का फैसला आने तक इंतज़ार किया जाए. रिपोर्ट आने के बाद हम अपना अगला दम उठाएंगे.

बैठक अभी चल ही रही थी कि पता चला कि पुलिस कैंपस में आ रही है. मैं हैरान हुआ. यूनियन ऑफिस से निकल कर मैं कैंपस का एक चक्कर लगाने निकला. कैंपस में घूमते हुए मुझे एबीवीपी के लोग दिखे. उन्होंने बताया कि भाजपा सांसद महेश गिरी ने पुलिस में एफआईआर कराया है. कैंपस में अफवाह और दहशत का माहौल तैयार हो चुका था, ऐसे में मुझे यह ज़रूरत महसूस हुई कि कुछ समय कैंपस में घूम कर, छात्रों के बीच में रह कर उनसे बातचीत की जाए. इसलिए मैंने कई घंटे ढाबों पर गुज़ारे और फिर सुबह करीब सवा चार बजे अपने होस्टल में सोने चला गया.

12 फरवरी की सुबह करीब साढ़े ग्यारह बजे मैं जगा. रोज़ की तरह नीचे ढाबे पर आकर मैंने लोगों से थोड़ी बातचीत की. इसके बाद मैं अपने स्कूल की तरफ़ बढ़ा. रास्ते में कन्वेन्शन सेंटर के पहले दो-तीन गाड़ियां लगी हुई थीं. वहीं वसंत कुंज थाने के एसएचओ खड़े थे. मैंने उनके पास जाकर हाथ मिलाया और पूछा कि क्या बात है. उन्होंने बताया कि वो 9 फरवरी वाली घटना के सिलसिले में आए हैं.

मैंने उनको याद दिलाया कि 9 फरवरी को ऐसा तो कुछ नहीं हुआ था कि इस पर इतना ध्यान दिया जाए. मैं खुद उस रात उनसे मिलने गया था, लेकिन वो सो रहे थे. एसएचओ ने बताया कि असल में ऊपर से दबाव है और पुलिस का दखल देना ज़रूरी है. उन्होंने मुझसे अपने साथ आने के लिए कहा क्योंकि उन्हें जांच के सिलसिले में कुछ पूछताछ करनी थी.

मैं गाड़ी में बैठ गया.

रास्ते में उन्होंने मुझसे मेरा मोबाइल फोन ले लिया. मैंने उन्हें बताया कि मेरे पास एक दूसरा फोन भी है और उसे भी निकाल कर मैंने उन्हें दे दिया. थोड़ी दूर आगे जाने के पाद उन्होंने मेरा पर्स भी ले लिया. मैंने सोचा था कि

Downloaded from PDFmaza.com

वो लोग मुझे वसंत कुंज थाने ले जाएंगे. लेकिन हम हौज़ ख़ास की ओर बढ़ रहे थे. रास्ते में पुलिस को बार-बार कॉल आ रहे थे. वे आपस में कुछ बातें भी कर रहे थे, जिनका सिरा मैं नहीं समझ पा रहा था. एक बार उनमें ग़लत रास्ता ले लेने पर हल्की-सी नोकझोंक भी हुई, क्योंकि इस रास्ते पर थोड़ा जाम मिल रहा था.

आख़िर में हम लोदी रोड थाना के सामने रुके. उनमें से एक ने मुझे कपड़े से ढंकने की सलाह दी. वे तो मुझे सिर्फ़ 'ज़रा पूछताछ' के लिए ले जा रहे थे. इसलिए मैं हैरान हुआ कि वे मेरा चेहरा क्यों ढंक रहे हैं, लेकिन मैं अभी भी समझ नहीं पाया था कि क्या हो रहा था.

वे मुझे थाने के भीतर ले आए और एक छोटे-से कमरे में बिठा दिया. अब पूछताछ का सिलसिला शुरू हुआ. जो आदमी मुझे लेकर आया था, वो मुझसे ठीक से बात कर रहा था. लेकिन उसके बाद एक दूसरा आदमी आया. उसने बड़ी बदतमीज़ी से मुझसे कहा, 'देश का खाता है और देश के ख़िलाफ़ नारे लगाता है?'

मुझे सुनकर बड़ा अजीब लगा. मैंने देश के ख़िलाफ़ नारे कब लगाए? मैं तो मोदी के ख़िलाफ़ नारे लगाता हूं और डंके की चोट पर लगाता हूं. मोदी अब देश हो गया है क्या?अब मुझे इसका अहसास होने लगा था कि कोई गंभीर गड़बड़ी थी. मैंने पूछा कि मुझे किस बात के लिए गिरफ़्तार किया है. गिरफ़्तारी वारंट कहां है?

'वारंट मिलेगा तुम्हें जेल में,' उसने कहा. 'सब मिलेगा.'

उसके बाद उसने किसी से फोन पर बात की. उसने पूछा कि क्या वो मुझे गिरफ़्तार कर ले.

फोन रखने के बाद उसने मुझसे मेरे पिताजी का नंबर मांगा. फोन नंबरों के मामले में मैं कमज़ोर हूं. मुझे अपना नंबर भी याद नहीं रहता. लेकिन चूंकि पिताजी का फोन मेरे घर का पहला फोन था, इसलिए वह मुझे याद था. मेरे पिताजी को फोन करके पुलिस ने बताया कि मुझे 'देशद्रोह' के लिए गिरफ़्तार कर लिया गया है.

पहली बार किसी ने मुझे मेरे ख़िलाफ़ आरोप के बारे में साफ़-साफ़ बताया था. इन कठोर शब्दों को सुनते हुए पहली बार मैं घबराया और भावुक हुआ. मेरे परिवार का खयाल मेरे दिमाग पर छा गया. मेरे चेहरे की रंगत देख कर अधिकारी ने सिपाही से पूछा कि मैंने खाना खाया था या नहीं. मैंने नहीं

Downloaded from PDFmaza.com

खाया था. उसने मुझे खाना खिलाने को कहा. मैंने खाना खाने से मना कर दिया. मैंने कहा कि मैं अनशन करूंगा.

उस पर मेरी बात का कोई असर नहीं पड़ा. उसने मेरी बेल्ट खुलवाई. मुझे घुमा-घुमा कर फोटो खिंचवाया.

इसके बाद मुझे सफरदजंग अस्पताल ले जाया गया. गाड़ी से उतरने से पहले उन्होंने मुझे कपड़ा बांध कर मेरा चेहरा छुपा दिया. अस्पताल में मेरी कोई जांच नहीं हुई. पुलिस ने खानापूर्ति की, डॉक्टर को मेरे करीब भी नहीं आने दिया गया. फिर पुलिस मुझे गाड़ी में ले आई. मेरे चेहरे पर बंधा काला कपड़ा हटा दिया गया. अब मुझे अदालत ले जाया जा रहा था.

किसी अदालत में मैं पहली बार गया था और यह फिल्मों से बहुत अलग थी. जज आए तो सब खड़े हुए. पुलिस ने बताया कि मैं कन्हैया हूं. मैंने देश के ख़िलाफ़ नारे लगाए थे और अफज़ल गुरु की बरसी मनाई थी. इसके ख़िलाफ़ ये आरोप हैं, उन्होंने कहा. हमें पांच दिनों के लिए पुलिस हिरासत (पीसी) चाहिए.

नौ फरवरी के कार्यक्रम में कन्हैया ने आपकी कोई मदद की?

उमर ने कहा कि मदद की कोई ज़रूरत ही नहीं है, डेढ़ सौ रुपए में पोस्टर बन जाता है.

पुलिस ने उमर से पूछा कि उस दिन जब आपका परमिशन कैंसल किया गया तो आपने कन्हैया को फोन किया था?

उमर ने कहा, हां फोन किया था. इसका फोन स्विच ऑफ था.

उनका अगला सवाल उमर से ही था कि आपका कार्यक्रम कन्हैया की इजाज़त के बिना कैसे हुआ?

उमर बोला कन्हैया जेएनयू का प्रेसीडेंट है. यूएसए का प्रेसीडेंट थोड़े है.

सवाल-जवाब पूरे हुए तो उनको वापस भेज दिया गया और मैं अपने सेल में लौट आया.

जाते वक़्त उन दोनों ने कहा कि मेरे पीछे अब वे भी जेल में आ रहे हैं, लेकिन मैं देख सकता था यह सब जल्दी ही ख़त्म होने वाला है. उनसे अलग होते हुए मैंने उस दिन की कल्पना की जब हम तीनों ही आज़ाद होंगे और अपने प्यारे जेएनयू में लौट जाएंगे. पिछले कई हफ्तों में पहली बार मुझे सुकून महसूस हो रहा था.

Downloaded from PDFmaza.com

दो मार्च का दिन था. ज़मानत की सुनवाई होने वाली थी. उस दिन मैंने पूरे दिन टीवी नहीं खोला. मुझे लगता था कि वहां ज़्यादातर ऊटपटांग बातें ही कही जाएंगी. सुनने से कोई फायदा नहीं है. कुल मिला कर न्यूज़ चैनलों से मेरा मन ऊबा हुआ था. अपनी सच्चाई तो मुझे पता थी, अपने बारे में ही इतना झूठ कैसे देखता?

ज़मानत होने की ख़बर मुझे तमिलनाडु स्पेशल पुलिस के उसी सिपाही से मिली. उसने मुझे बताया कि उसी दिन रात में मुझे चुपचाप निकाल दिया जाएगा. लेकिन कागज़ी कार्रवाइयों में देर हो गई. इसलिए उस दिन वो मुझे छोड़ नहीं पाए.

मैंने पूछा कि तब क्या मुझे अगली सुबह निकाला जाएगा? मुझे बताया गया कि दिन में क़ैदियों को नहीं छोड़ा जाता. हमेशा उन्हें शाम के पांच बजे के बाद ही छोड़ा जाता है. इस तरह मुझे अगले पूरे दिन जेल में बिताना था.

3 मार्च.

दिन शुरू हुआ. मेरा आख़िरी दिन. कई क़ैदी मिलने आए. रेडियो जॉकी लड़के ने कहा कि अगर वो सज़ा से बच पाया तो आकर मुझसे मिलेगा. इसके बाद मैं जेलर से मिलने के लिए गया, जिन्होंने मुझे बुला रखा था. जाते हुए मैंने देखा कि मेरी बगल वाले सेल का सेवादार उसकी साफ़-सफाई कर रहा था. पूछने पर उसने बताया कि उस सेल में क़ैदी आने वाले हैं.

जेलर ने मुझे सूचना दी कि आज मुझे शाम को छोड़ दिया जाएगा. उसने मुझसे पूछा कि मैं कहां जाना चाहूंगा. घर?

मैंने कहा, 'हां मैं घर ही जाऊंगा. जेएनयू मेरा घर ही है.'

उसने पूछा कि मैं कहां रहूंगा.

अपने होस्टल में, मैंने जवाब दिया.

मुझे पता लगा कि मेरे वार्ड में नए आने वाले क़ैदी उमर और अनिर्बान थे. बाद में मालूम चला कि अनिर्बान को मेरे सेल में रखा गया और उमर को बगल वाले सेल में.

जेलर के पास से लौटने के बाद मैंने सेवादार को बुलाया और अपने कपड़े और तौलिया उसे दे दिए, क्योंकि कोई सामान बाहर ले जाने की इजाज़त नहीं थी. सेवादार दफा 307 में दस साल से बंद था. उसने मेरी बहुत सेवा

Downloaded from PDFmaza.com

की थी. उससे मेरी बड़ी आत्मीयता हो गई थी. मैं उसको कुछ और भी देना चाहता था. लेकिन मैं वहां जेल में उसे क्या दे पाता! मुझे याद आया कि मेरा दोस्त जेल कार्ड में एक हज़ार रुपए डाल कर गया था. मैंने उसे खर्च नहीं किया था. बस खाने के लिए कुछ चीज़ें खरीदी थीं. वह कार्ड मैंने उसे दे दिया.

जेल से मैं बाइक पर बैठ कर निकला और मैंने वे कपड़े पहन रखे थे, जिनमें मैं जेल में आया था. मेरे दोनों वकील दोस्त और मेरे कुछ टीचर मुझे लेने के लिए गए थे. चूंकि जेल के बाहर लोग थे और पुलिस किसी हंगामे से बचना चाहती थी, इसलिए बाइक पर बिठा कर मुझे जेल के आवासीय हिस्से वाले पिछले रास्ते से निकाला गया. कुछ दूरी पर पुलिस ने एक वाहन खड़ा कर रखा था. मुझे उसमें बैठाया गया और हम चल पड़े, तिहाड़ से दूर, पिछले बीस दिनों को पीछे छोड़ते हुए. वे बीस दिन जो अब एक पूरा का पूरा जीवनलगने लगे थे.

हम पश्चिमाबाद गेट से जेएनयू में दाखिल हुए और मुझे प्रो. अजय पटनायक के घर पर पहुंचा दिया गया. एक बड़ी भीड़ मेरा इंतज़ार कर रही थी. फोटो खिंचाने के लिए लोग टूटे पड़ रहे थे. करीब बीस दिनों बाद मैं जेएनयू लौटा था. हैरान-परेशान, भीड़ से घिरा हुआ, मैं इससे अलग ही लगने लगा था. जेएनयू का मतलब है अपने ढाबे, होस्टल का अपना कमरा. वो अब बहुत दूर हो गए थे. अब बीच में बहुत सारी चीज़ें आ गई थीं.

मुझे घेरे में लेकर कर एडमिनिस्ट्रेटिव ब्लॉक के पीछे पहुंचा दिया गया, जिसे मेरी गिरफ़्तारी के बाद छात्रों और टीचरों ने आज़ादी चौक का प्यारा-सा नाम दे दिया था. जब मैंने उस विशाल भीड़ को देखा, मैं सारी अनिश्चितताओं, सारी परेशानियों को भूल गया. मैं अपने लोगों के साथ था.

वे लोग जो मुझे जानते थे. जिन्होंने मुझे चुना था और जिनके भरोसे पर मुझे खरा उतरना था. जो मेरे लिए लड़े थे. जो 21 बसों में भर कर गए थे और जिन्होंने दिल्ली की सड़कों पर मेरी रिहाई के लिए नारे लगाते हुए जुलूस निकाला था. वे मेरे लोग थे. मेरे साथी, मेरे टीचर, स्टाफ, जिनके प्यार और समर्थन ने इस अभूतपूर्व संघर्ष को मुमकिन बनाया था. जिन्होंने सिखाया था कि दुनिया की बड़ी से बड़ी लड़ाई साथ रह कर लड़ी और जीती जा सकती है.

अब मुझे उनके सामने बोलना था. लेकिन मेरे श्रोताओं में सिर्फ़ जेएनयू के लोग नहीं थे. जब मैंने हज़ारों लोगों के उस मजमे के उस पार खड़े कैमरों

Downloaded from PDFmaza.com

की कतारों को देखा, मुझे इसका अहसास हुआ कि मेरे श्रोताओं में इस देश की एक अरब आबादी भी शामिल है. मुझे इस आज़ादी चौक से इस मुल्क को संबोधित करना है.

हमेशा की तरह मैंने पहले से कोई भाषण नहीं बनाया था. पिछले बीस-बाईस दिनों में मैंने जो कुछ भी देखा था, जो कुछ भी भुगता था, पुलिस और क़ैदियों से जो कुछ भी बातें की थीं, मैंने उन्हीं को जेल से आने के बाद अपने पहले बयान के रूप में देश के सामने पेश किया.

इसमें मैंने मुख्यत: जेएनयू पर होने वाले हमलों और उनकी वजहों की बात की थी. कहा गया था कि जेएनयू के छात्र सब्सिडी का पैसा खाते हैं और देश के ख़िलाफ़ नारे लगाते हैं. प्रेस में जेएनयू के राष्ट्र विरोधी छात्रों बनाम देशभक्त सैनिकों का एक मुद्दा खड़ा करने की कोशिश की जा रही थी, जिनकी हाल ही में सियाचिन में एक त्रासद दुर्घटना में मौत हुई थी.

मुझे इस हमले का जवाब देना था. साथ ही, मुझे संघ परिवार और सरकार के झूठे प्रचारों का पर्दाफाश करना था. लेकिन सिर्फ़ पर्दाफाश ही उन अपेक्षाओं और उम्मीदों के लिए काफी नहीं था. मुझे यह भी बताना था कि इसका समाधान क्या है.

हम सवाल उठाने वाले छात्रों पर आरोप लगा था कि हम जिस प्लेट में खाते हैं, उसी में छेद करते हैं. जो करोड़ों रुपए के घोटाले करते हैं, वे क्या करते हैं? मुझे इस सवाल को जनता के सामने उठाना था.

क्यों सब्सिडी पर निर्भर हम गरीब छात्रों की ईमानदारी पर संदेह करते हुए कहा जाता है कि हम जिस थाली में खाते हैं, उसी में छेद करते हैं? करोड़ों रुपए का घोटाला करके भी पाक साफ़ बने रहने वाले नेताओं से सवाल क्यों नहीं किया जाता? इस मुल्क में हमेशा से एक गरीब को ही ईमानदारी का सबूत क्यों देना होता है?

आख़िर देश से गद्दारी करने वाले दलों को देशभक्ति का प्रमाण पत्र बांटने का नैतिक अधिकार कहां से मिलता है?

वह कोई भाषण नहीं था. वह अपने अधिकारों, सत्ता और इस देश के नौजवानों के भविष्य को लेकर एक संवाद था. एक ऐसी बातचीत जो मुझे हमेशा पसंद रही है और जिससे रोकने के लिए मुझे बीस दिनों पहले गिरफ़्तार कर लिया गया था. अब मैं फिर से एक संवाद शुरू कर रहा था.

Downloaded from PDFmaza.com

मैंने माइक की ओर कदम बढ़ाए, उधर रात गहरी होती जा रही थी और मैं अपने सामने चेहरों को देख रहा था और उन चुनौतियों को जो आगे आने वाली थीं.

Downloaded from PDFmaza.com

Chapter 8

उपसंहार

मैंने एक नई ज़िंदगी शुरू की है. वह युवक, जो कभी मामूली विरोध प्रदर्शनों में भी अगली कतार में खड़े होने में संकोच करता था, अचानक ही देश और दुनिया की सुर्खियों में आ गया है. मेरी निजी ज़िंदगी अब ख़त्म हो चुकी है. मैं हर वक़्त लोगों, सुरक्षा गार्डों और मीडिया से घिरा रहने लगा हूं.

जेल से आने के बाद सैकड़ों की संख्या में चिट्ठियां आती हैं, जिनमें से कुछ में भरपूर प्यार और समर्थन होता है तो कुछ में भरपूर गालियां और नफ़रत. कई बार ऐसा महसूस हुआ जैसे एक छोटी जेल से निकलकर एक खुली जेल में मुझे छोड़ दिया गया हो. लेकिन तभी यह भी महसूस होता है कि जो लोग मेरे लिए सड़कों पर उतरे, डंडे खाए, गालियां खाईं, पुलिस केस और न जाने कितने तरह के दमन को सहा, उनके लिए भी ये दुनिया एक खुली जेल के समान ही तो है. वे भी तो क़ैद हैं – जातिवाद, पितृसत्ता, गैरबराबरी और हर प्रकार के शोषण के तंत्र में. इन सभी प्रकार के शोषण की दीवार को गिराकर, आज़ाद खयाल इंसानों के रहने लायक, बराबरी, न्याय और मानवता पर आधारित एक दुनिया बनाने के लिए लड़ना होगा.

मुझे यह कहना होगा कि मेरे जीवन में आए इस बदलाव ने मुझे राजनीतिक रूप से और भी मज़बूत बना दिया है, लेकिन ऐसा नहीं है कि हर समय इससे मुझे ख़ुशी ही मिलती हो. अब मेरी हर बात एक ख़बर बन जाती थी, जिसकी न मुझे आदत थी और न ही यह सब मुझे सहज लगता था. यह काफी हद तक परेशान कर देने वाला भी था. लग रहा था कि मेरी अपनी आज़ादी छिन गई थी, न अब मैं कैंपस में किसी भी वक्त बेफिक्री से अपने साथी छात्रों से मिल सकता था, न ढाबों पर बैठ सकता था, न उनसे बातें कर सकता था. यहां तक कि अपने होस्टल के कमरे में भी अकेले नहीं रह सकता था. मुझे लोगों से मिल कर ऊर्जा मिलती है. मुझे राजनीति और मुद्दों पर बातें करना पसंद है. मुझे कहीं भी आज़ादी से आना-जाना, लोगों से बातें करना पसंद है. यह सब कर पाना अब मुमकिन नहीं रहा था. दोस्तों के साथ भी मेरा रिश्ता बदल गया था.

पत्रकार हमेशा ताक लगाए रहने लगे थे कि मैं कुछ कहूं, उनसे मिल लूं. कई बार यह अच्छा भी लगता कि मीडिया मेरी बातों को लोगों तक पहुंचा रहा

Downloaded from PDFmaza.com

है. अब मेरी बातें सीधे जनता तक पहुंच रही हैं. लेकिन फिर अहसास होने लगा कि उन्हें मेरे विचारों से ज़्यादा ऐसी चीज़ों की तलाश होती, जिनसे कोई विवाद हो.

घर जाने का मौक़ा मुझे जेल से आने के चार महीने बाद मिल पाया, जब मैं एक जनसभा को संबोधित करने बेगूसराय गया. घर भी अब पहले वाले घर जैसा नहीं लगा. घर पर आनेवालों की भारी भीड़ थी. मेरे साथ सुरक्षा गार्डों की एक बड़ी फौज थी, और मेरे छोटे से घर में इतने लोगों के रहने की जगह नहीं थी. वे मेरी सुरक्षा कर सकें, इसलिए मुझे पड़ोस के एक घर में सोना पड़ा.

गांव में, सनराइज़ पब्लिक स्कूल के प्रिंसिपल रामकुमार जी मिले और भावुक होकर रो पड़े. उन्होंने मुझे लड्डू और आम दिए और स्कूल के समय के पुराने फोटो दिखाए. उन्होंने कहा, 'एक टीचर का जीवन सफल हो जाता है, जब उसका पढ़ाया हुआ बच्चा नाम रोशन करता है. मुझको लगता है कि मेरा जीवन सफल हो गया.'

आज मैं उस बच्चे की परिस्थितियों को फिर से महसूस करने की कोशिश करता हूं, जो स्कूल के यूनिफॉर्म को गंदा करने के लिए मां की डांट सुनता, जिसकी पढ़ाई के लिए घर में दूध लेना बंद कर दिया गया था, जो नए पब्लिक स्कूल की संस्कृति के साथ तालमेल बिठाने के लिए जीतोड़ कोशिशें करता रहता था, लेकिन वक्त की चादरों ने अहसास की तस्वीरों को धुंधला सा कर दिया है.

जेल से आने के बाद मैंने हैदराबाद जाना तय किया. रोहित वेमुला का हैदराबाद, जिनके इंसाफ की लड़ाई के बीच में मुझे गिरफ़्तार कर लिया गया था. फिर यात्राओं का एक सिलसिला शुरू हो गया. ये वे जगहें थीं, जो इस लड़ाई के नक्शे बनाती हैं: नागपुर से लेकर, जहां आरएसएस का मुख्यालय है और जिसके ख़िलाफ़ हैदराबाद की लड़ाई शुरू हुई थी, केरल के प्रगतिशील गांवों तक. मुंबई की विशाल रैलियों से लेकर उना की आज़ादी तक, धीरे-धीरे ये लड़ाई एक देशव्यापी शक्ल लेती जा रही है.

मैं जहां भी जाता हूं, मुझसे ढेर सारे लोग मिलने आते हैं. छात्र, सरकारी कर्मचारी, अधिकारी, कॉरपोरेट में काम करनेवाले युवा, कलाकार, इस व्यवस्था से दुखी और नाराज़ लोगों की वह विशाल आबादी जिसको लगता है कि मौजूदा व्यवस्था इंसानियत और लोगों की खुशहाली की दुश्मन है.

Downloaded from PDFmaza.com

वे सब एक दूसरे की तकलीफों में और उसके विरुद्ध संघर्षों में शामिल होना चाहते हैं.

पुणे से दिल्ली की मेरी वापसी के दौरान एयर इंडिया की फ्लाइट के एक कैप्टन ने मुझे रिसीव किया और सारी सवारियों के उतर जाने के बाद वो मुझे जहाज़ के एक किनारे सीट पर ले गया. इसके बाद उसने क्रू के बाकी लोगों और एयरहोस्टेस को बुलाया. एक एक कर वे सब अपनी मुश्किलों के बारे में बताने लगे.

कुछ किसान मुझसे गुजरात से मिलने आए, जिनकी ज़मीन अडानी समूह के पावर प्लांट ने छीन ली है.

मुंबई में एक बार सऊदी अरब से आई एक भारतीय मुस्लिम महिला ने मुझे रोक कर रहा, '...आप कन्हैया हैं ना...आपसे एक बात कहनी थी. कीप अवर कंट्री सेफ...हमारे मुल्क को सुरक्षित रखिए.'

जेल जाने से पहले मैंने कभी भी नहीं सोचा था कि मैं जेल चला जाऊंगा. जेएनयूएसयू का अध्यक्ष बनने के पहले मैंने कभी नहीं सोचा था कि मैं जीत सकता हूं. जेएनयू आने के पहले मैंने कभी जेएनयू का छात्र बनने की कल्पना तक नहीं की थी. मुखर्जी नगर में रहते हुए मैंने सोचा था कि मैं डीएम बनूंगा, आज लोग मुझसे पूछते हैं कि क्या मैं चुनाव लड़ूंगा? मुझे नहीं पता कि आगे क्या होगा, लेकिन जो भी होगा, मुझे उसका सामना करना ही होगा क्योंकि मैंने अपनी भूमिका तय कर ली है. मैं उन लोगों की तरफ़ हूं जो इंसानियत को बचाने की भूमिका में हैं. हमसे पहले भी लोग एक बेहतर समाज के लिए लड़े हैं और हमारे बाद की पीढ़ियों के लिए लड़ना हमारा काम है.

जेल के आख़िरी दिन मेरे सुरक्षा गार्ड ने मुझे राजकुमार की एक कहानी सुनाई थी, जो राजकुमारी का हाथ और राजा का राजपाट जीत लेता है. लेकिन इसके बाद वो अपने लिए एक ऊंचा सिंहासन बना लेता है, जिस पर सीढ़ियां चढ़ कर बैठना पड़ता है.

उसका सवाल था, उसने ऐसा क्यों किया?

यह सिर्फ़ उसी का सवाल नहीं है. इस मुल्क की ज़्यादातर आबादी का सवाल भी है. कि अच्छे दिनों का वादा करके सत्ता में आए प्रधानमंत्री नौ लाख का सूट क्यों पहनते हैं जबकि बुनकर लोग कर्ज़ के बोझ से दबकर

Downloaded from PDFmaza.com

आत्महत्या कर रहे हैं? जब उन्हें टमाटर और दाल के दामों की चिंता करनी चाहिए तो वो निजी कंपनियों के लिए मॉडलिंग क्यों कर रहे हैं?

लोग जानना चाहते हैं कि इस देश के शासक ने अपना सिंहासन आसमान में क्यों बना लिया है? वो ठगे हुए महसूस कर रहे हैं. वो इस ऊंचे सिंहासन की बुनियाद पर सवाल खड़े कर रहे हैं.

हमारे सामने एक ही रास्ता है. बाबासाहेब ने कहा है, हमें शिक्षित होना है, वरना समाज की समस्या समझ में नहीं आएगी. और इस समस्या से हम अकेले लड़ नहीं सकते. इसके लिए हमको संगठित होना होगा. सिर्फ़ संगठित होने से कुछ नहीं होगा, जब तक उसके ख़िलाफ़ लड़ते नहीं. हम जिन समस्याओं का सामना कर रहे हैं, उनके ख़िलाफ़ एकजुट होकर लड़ने की ज़रूरत है.

लड़ेंगे, जीतेंगे.

आभार

एक इंसान की ज़िंदगी सिर्फ़ उसकी अपनी नहीं होती है, उसमें उसके परिवार और पूरे समाज का योगदान होता है. और फिर इस देश की संघर्षरत जनता ने जो प्यार और समर्थन मुझे दिया है, वह हर पल मुझे ताक़त और मज़बूती का अहसास कराता है. इसमें मेरे मित्र, शिक्षक, जेएनयूएसयू के लोग, सभी संगठनों के साथी, जेएनयू के कर्मचारी और सुरक्षाकर्मियों के अलावा अपने संगठन एआईएसएफ के सभी साथी और पूरा जेएनयू समुदाय शामिल है. आप सबका मैं हमेशा आभारी हूं.

इदरीस ने मुझे सबसे पहले यह सलाह दी थी कि मुझे एक किताब लिखनी चाहिए. आपका शुक्रिया.

आकांक्षा, चंद्रिका और अमृता का शुक्रिया, जिन्होंने इस किताब को लिखने में मेरी मदद की. गोपाल और गेविन मॉरिस का शुक्रिया, जिन्होंने इस किताब का कवर डिज़ाइन किया.

रेयाज़ुल हक़ का शुक्रिया, जिन्होंने कई-कई रातें और दिन इस किताब पर काम करते हुए बिताए और इसे यह शक्ल दी.

जगरनॉट में चिकी सरकार और रेणु आगाल का शुक्रिया, जिन्होंने किताब को और बेहतर बनाने के लिए आख़िरी दिन तक मेहनत की.

Downloaded from PDFmaza.com

यह किताब पूरी होकर पढ़ने वालों के बीच आ पाई है, इसके लिए वरुण और निशांत का शुक्रिया, जिन्होंने मेरी यात्राओं और दूसरी व्यस्तताओं के बीच मेरी मदद की कि मैं समय निकाल सकूं और संपर्क में रहूं.

Downloaded from PDFmaza.com